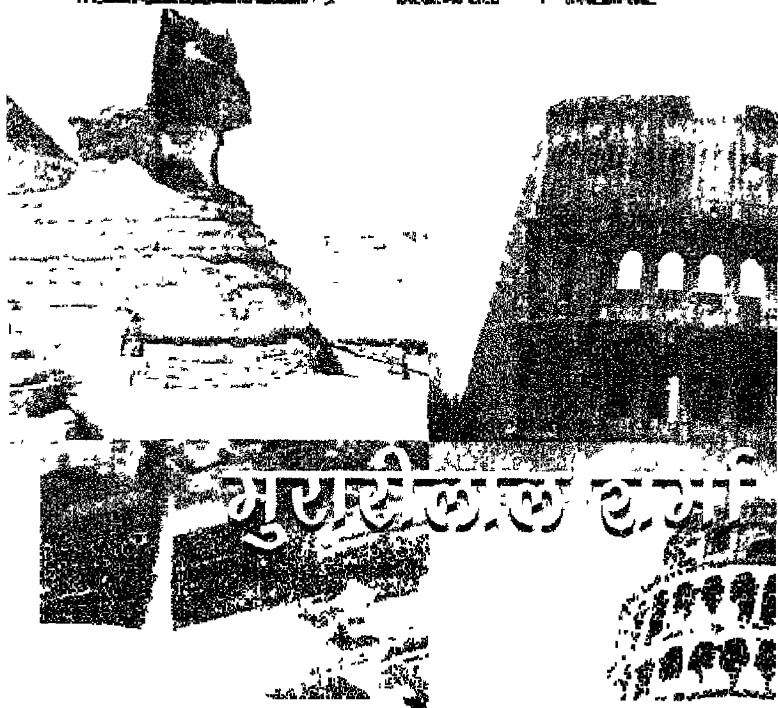


विश्व के महान् आश्चर्य

लेखक

मुरारीलाल शर्मा



ग्रन्थ विकास

विश्व के महान् आश्चर्य

प्रकाशक

ग्रन्थ विकास

सी-37, आदर्श नगर, राजापार्क, जयपुर

लेखक

मुरारीलाल शर्मा

सम्पादक

डॉ. कृष्णवीर सिंह

मूल्य

एक सौ पच्चीस रुपये मात्र

आई.एस.बी.एन.

81-88093-13-0

संस्करण

2003

लेजरटाईपसैटिंग

अल्टीमेट कम्प्यूटर्स, 456389, जयपुर

मुद्रक

शीतल ऑफसैट, जयपुर

विश्व के महान् आश्चर्य

प्रकाशक

ग्रन्थ विकास

सी-37, आदर्श नगर, राजापार्क, जयपुर

लेखक

मुरारीलाल शर्मा

सम्पादक

डॉ. कृष्णवीर सिंह

मूल्य

एक सौ पच्चीस रुपये मात्र

आई.एस.बी.एन.

81-88093-13-0

संस्करण

2003

लेजरटाईपसैटिंग

अल्टीमेट कम्प्यूटर्स, 456389, जयपुर

मुद्रक

शीतल ऑफसैट, जयपुर

पुरोवाक्

समय के रथ के पहियें की मानिन्द सभ्यता, संस्कृति एवं विकास के विविध आयामों के रूप–प्रतिरूपों में आश्चर्यजनक परिवर्तन एवं उतार–चढ़ाव आये है। सूत्रधार समय के वर्चस्व के कारण शिखर पर पहुँची हुई सभ्यता के अवशेषों को ज्ञात कर अनुसंधान एवं शोधार्थी गौरवान्वित हो रहे हैं यह मात्र भाग्य की विडम्बना ही है। खैर।

दरअसल चौरासी लाख योनियों में अतिविशिष्ट एवं सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानव की शारीरिक संरचना यद्यपि शेष प्राणियों की तुलना मे दुर्बल एवं नगण्य कही जा सकती है किन्तु बौद्धिक शक्ति में इसका विकल्प उपलब्ध नहीं है। इसीलिए मानव ईश्वर तक को भी अपने आधिपत्य में करने की बातें किया करता है। पृथ्वी, आकाश एवं पाताल, तीनों लोकों पर मानव के जिस अदम्य साहस एवं शौर्य की विजय पताकाएँ फहरा रही हैं अतिश्योक्ति या अलंकारिक भाषा सहित उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है, सर्वविदित है। प्रारम्भ से ही ईश्वर ने मानव मस्तिष्क को क्रियाशील एवं जुझारु प्रकृति का बना दिये जाने के कारण मानव ने आश्चर्यजनक स्वःनिर्माण के प्रमाण देने प्रारम्भ कर दिये थे। आज जब हम सैकड़ों वर्ष पूर्व निर्मित ऐसे अद्‌भुत किन्तु महान् आश्चर्यजनक निर्माणो को देखते हैं तो स्वयं को तत्कालीन मानव के समक्ष बौना एवं अदना–सा महसूस करने लगते हैं। कारण, आज विज्ञान के आविष्कार के फलस्वरूप ऐसे औजार एवं सहायक यन्त्र उपलब्ध हैं जिनकी सहायता से असंभव कार्य को भी सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। किन्तु एक निर्धारित सीमा का अतिक्रमण करना मशीनों के वश में भी नहीं है किन्तु तत्कालीन मानव ने असंभव शब्द को ही शब्दकोश से निकाल फैंका था। इसीलिए आज जब हम उनके कृतित्वों को देखते हैं तो वे हमे चिंतन करने पर मजबूर करती प्रतीत होती है। लेकिन हमारी समाधान विहिन चिंतन प्रक्रिया के असफल होने के सिवा कोई विकल्प दृष्टिगोचर प्रतीत नहीं होता और हमें दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ जाती है, अनायाश ही यह शब्द स्वतः मुखरित हो उठते हैं कि धन्य थे वे मानव जो शारीरक, मानसिक रूप से पूर्णतः पल्लवित एवं पुष्पित थे। वे कला, संस्कृति, तकनीकि ज्ञान में पारंगत थे एवं आज के मानव से अधिक संवेदनशील, पराक्रमी, धैर्यवान एवं सौम्य–सभ्य थे।

प्रस्तुत कृति एक 'मल्टी डायमेन्शन' छवि वाली पुस्तक है जिसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ऐसे ताने–बाने की बिसात बिछाई गई है जिसमें संसार भर के समस्त

महान् आश्चर्यो का बड़े सलीक स पिराया गया हे। इसस पूर्व यद्यपि इन आश्चर्यो के विषय में अति सूक्ष्म सूचना सहित एक-आध पुस्तके उपलब्ध थी किन्तु अथक प्रयासों के पश्चात् उक्त कृति में समस्त आश्चर्यों की उत्पति से बाद तक की कहानी को संचित कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। ऐतिहासिक साक्ष्यो के अनुसार चीन की सभ्यता विश्व की समस्त सभ्यताओं की सिरमौर रह चुकी है इसकी विशिष्टताओं एव गौरव गरिमा का वृतान्त वैदिक साहित्य में भी उपलब्ध है। विशेषत: कला, दस्तकारी एवं कारीगरी आदि मे चीन विश्व गुरु की गद्दी पर विराजमान था। उनके गुरुत्व का प्रमाण 'चीन की दीवार' है जो संसार के समस्व आश्चर्यो मे से एक महत्वपूर्ण आश्चर्य है। यद्यपि इस दीवार के निर्माण का दूसरा पहलू अति कलंकित एवं अमानवीय है जिसमें हजारो नही लाखो परिवारो ने अपने प्राणो की आहुतियाँ देकर इसके निर्माण मे अपना योगदान दिया। चिंग ने तातार आक्रमणकारियों से सुरक्षित होने के कारण इस अक्षुण्य दीवार का निर्माण करवाया। यह पेचिंग उत्तर से मध्य एशिया के मरुस्थल तक चली गई है। इसकी नींव प्रत्येक स्थान पर पच्चीस फीट है। चौड़ाई इतनी है कि एक साथ तीन गाडियॉ दौड़ सकती हैं। नि:संदेह मानव रक्त, मॉस, एवं साँसो से निर्मित इस दीवार के प्रत्येक पत्थर एवं प्रत्येक ईट मे मानव की कराह एवं पीड़ा की निर्मम चीख अनुगुंजित होती प्रतीत होती है।

मिश्र (ईजिप्ट) की संस्कृति एवं सभ्यता भी प्राचीन काल में अग्रणी थी। मिश्र के पिरामिड़ों ने आज भी वैज्ञानिकों, कला मर्मज्ञों एवं इंजीनियरों के समक्ष कुछ मूल प्रश्न रख छोड़े है जिनका समाधान या उत्तर अभी तक अप्राप्य है। प्रस्तुत पुस्तक में हमने इन समस्त पिरामिड़ों को मूल पृष्ठभूमि सहित उल्लेखित करने का प्रयास किया है। पुरातत्ववेताओं के अनुसार लगभग चार हजार वर्ष पूर्व निर्मित इन पिरामिडों का निर्माण शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित है। किन्तु विशेष बात यह उत्पन्न होती है कि हजारो क्विंटल वजन के पत्थरो को आखिर किस विधि से इतनी ऊँचाई तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की?

भारत के 'ताजमहल' को शब्दो द्वारा व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। जैसे कश्मीर की कोई परिभाषा नही है, स्वर्ग का कोई विकल्प नहीं है ठीक उसी भॉति 'ताज' का कोई सानी नहीं है। मानवी प्रेम के प्रतिबिम्ब का ज्वलन्त प्रमाण जिसमें पति-पत्नी के सम्बन्धों के रेशमी धागों की सप्तरंगी आभा मुखरित होती है।

अनन्तकाल से ग्रीस निवासी जुपीटर और जूनो की मूर्तियों की श्रद्धापूर्वक पूजा एवं भक्ति करते आए हैं। महान् कलाकार फिडियस द्वारा निर्मित ओलम्पिया नगर की जुपीटर मूर्ति का सम्पूर्ण विवरण देने का निनम्र प्रयास किया गया है। इसी भाँति एलोरा एवं अजन्ता की गुफाओं मे निर्मित मंदिरों एवं मूर्तियों का सम्पूर्ण इतिहास आप इस पुस्तक मे पढ़ पायेंगे।

भूमध्य सागर पर स्थित 'रोड्स द्वीप' नामक टापू के निवासियो द्वारा निर्मित 'एपोलो' की भव्य, विलक्षण मूर्ति, बेबीलोन का लटकता हुआ उपवन, मेसोलियम का समाधि मंदिर, अलेकजेण्ड्रिया का आकाशदीप तथा इफिसास का 'डायन देवी का मन्दिर' आदि के उद्भव विकास के इतिहास पर अनवेषणात्मक सामग्री जो इन आश्चर्यजनक स्थानों की सम्पूर्ण जानकारी प्रेषित करती है।

रोम के विशाल, भव्य क्रीड़ांगन 'कोलोसियम', पीसा की झुकी हुई मीनार, रेट्स नगर का देवमन्दिर, सेनफ्रांन्सिसको का झूलता हुआ 'गोल्डन-गेट-ब्रिज' एवं न्यूयार्क स्थित 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' की ऐसी खोजपूर्ण, रोमांचित कर देने वाली सामग्री जो पाठक के अन्त:करण में सनसनी एवं सिहरण उत्पन्न कर देगी।

प्रस्तुत पुस्तक में सम्मिलित सामग्री की विषय-वस्तु कौतुहल एवं रोमांच से परिपूर्ण होने के कारण जन-सामान्य के लिए भी ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगी। सीधी, सरल भाषा में रचित पुस्तक में पाठक की जिज्ञाशा के अनुरूप सामग्री का चयन किया गया है।

निष्कर्षत. मानव के मस्तिष्क के जीवन्त उदाहरणों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य इन आश्चर्यो की सम्पूर्ण सूचना पाठकों तक पहुँचाना ही है।

अपनी प्रतिक्रियाओं से अवगत करवाने का श्रम करें ताकि भविष्य मे संवर्द्धित, संशोधिन रूप प्रस्तुत किया जा सके क्योंकि जागरुक पाठक ही कलमकार का मार्ग प्रशस्त करता है।

--डॉ. कृष्णवीर सिंह

अनुक्रमणिका

चीन की महान् दीवार

प्राचीन काल से ही संसार के सभ्य देशों में चीन का स्थान अग्रणी था। कहते हैं चीन ही वह देश है जिसने विश्व को सभ्यता की प्रारम्भिक शिक्षा दी थी। हमारे वैदिक युग के साहित्य मे भी इस देश की गौरव गरिमा की अनेक गाथाएँ यत्र-तत्र विखरी पडी है। यहाँ के निवासी दस्तकारी और कारीगरी में संसार के अन्य देशों के गुरु समझे जाते थे। अब भले ही यूरोप आदि महाद्वीप के विभिन्न देश अपनी विद्वता और कला-कौशल का ढोल पीटते हों, पर सृष्टि के प्रारम्भ मे जब उन देशो के निवासी नग्नावस्था में रहा करते थे, जंगलों में घूमा करते थे तथा पहाड़ो और पहाड़ियों की कन्दराओ मे जानवरों की तरह जीवन व्यतीत करते रहते थे, उन दिनो चीन और भारत आदि एशिया महाद्वीप देशों के लोग अच्छे-अच्छे वस्त्र धारण करते थे तथा अपने आवास के लिए इन देशो के लोगों ने सुन्दर-सुन्दर महल तक बनाये थे।

'चीन की महान् दीवार' जो ससार के महान् आश्चर्यो ने एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है और जिसका वृतान्त हम इन पृष्ठो में दे रहे है, यह इस वात का स्पष्ट प्रमाण है कि आज से हजारों वर्ष पहले भी इस देश में एक से वढकर एक वढकर कलाकार भरे पड़े थे। जिस बन्दूक और बारूद के बल पर पश्चिम के देश दुनियॉ के सामने सीना तानकर चलने का गर्व-प्रदर्शित करते हैं उसका आविष्कार सर्वप्रथम चीन ने ही किया था। चीन ने ही उन्हें बन्दूक बनाने और वारूद बनाने की शिक्षा दी थी। पर समय का चक्र कुछ विचित्र ढग से चलता रहता है। आज शिक्षक देश पिछड़ा हुआ है और अवहेलित राष्ट्र कहला रहा है, और उस समय के विद्यार्थी देश अपनी गुरुता का डंका पीट रहे हैं इसे समय का फेर नहीं तो और क्या कहेंगे?

आज इग्लैण्ड मे, सयुक्त राज्य अमेरिका मे, फ्रास मे तथा अन्य यूरोपीय देशो मे अनेकानेक 'माचिस' (दियासलाई) की फैक्टरियॉ हैं। अन्य देशों में भी जहॉ तहॉ अग्रेजों द्वारा संचालित अनेक दियासलाई की फैक्टरियॉ चल रही हैं। पर हम जानते है कि जिस दियासलाई के बिना एक क्षण भी हमारा काम नहीं चल सकता, उसको भी सर्वप्रथम चीन देश के निवासियों ने ही बनाया था। उन्होंने ही विश्व को इस कला का आविष्कार कर अपना अनूठा काम बताया था। रेशम और रेशमी वस्त्रो का भी उत्पादन सर्वप्रथम चीन देश में ही हुआ था। इसके पूर्व कोई भी देश रेशम का नाम तक नहीं जानता था। यही कारण है कि सस्कृत में रेशम के लिए 'चीनाशुक' नाम रखा गया।

सदा से चीन देश के निवासियों की प्रतिभा अद्वितीय रही है। नई-नई वस्तुओं के अविष्कार करने की उनकी क्षमता अपार रही है। हमेशा उन्होने इस दिशा में संसार का नेतृत्व किया है पर विधि की विडंबना भी अनूठी और विचित्र है। नियति की चक्रचाल को कोई नहीं समझ सकता। एक समय संसार के गुरु कहलाने वाले इस देश का जब अध पतन होने लगा, तो वह भी खूब हुआ। एक दम शिखर की ऊंचाई तक पहुॅचा हुआ चीन नीचे, एक दम नीचे पतन के गर्त में गिर गया था। चीन के तत्कालीन सम्राट चिंग का इस दीवार को बनाने के पीछे निम्न उद्देश्य प्रकार था। एक तो यह कि उत्तर के उपद्रवकारी तातारों से उसके देश की रक्षा होती थी और दूसरे इस दीवार के निर्माण की अवधि में उसे अपने भीतरी दुश्मनों के खून-चूसने का भी पूरा अवसर मिल गया। इस दीवार के बनने में कितना धन खर्च हुआ, कितने लोगों के प्राण गये, इसका कोई प्रामाणित उल्लेख उपलब्ध नहीं है। इतिहास के जानकार यही बतलाते हैं कि जहॉं-जहॉ से होकर यह दीवार गई है, वहीं-वहीं के लोगों पर इस दीवार के निर्माण का सारा खर्च डाला गया था। सम्राट की तरफ से इसमें काम करने वालों को कोई मूल्य नहीं दिया जाता था। लोग अपनी तरफ से खाकर इस दीवार के बनाने में जी-जान से जुट गये थे।

चिंग जब उत्तर से तातार आक्रमणकारियों को भगाकर लौटा, तो उसे इस बात की सूझ हुई कि वह इस प्रकार की एक दीवार बनवाये जिससे चीन की रक्षा हो सके। प्रजा उसे बहुत चाहती थी। अत· उसने लोगों को केवल शब्दों से प्रोत्साहित किया और उसकी आवाज सुनते ही लोग प्राण-प्रण से इस महायज्ञ में आहुति देने के लिए चल पड़े। चिंग जानता था कि इस निर्माण को पूर्ण करने मे उसकी हजारों की संख्या में प्रजा को प्राण से

भी हाथ धोना पडेगा। वह यह भी जानता था कि उसके खजाने में इतना धन नहीं है कि वह मजदूरों को मजदूरी भी दे सके। पर इस दीवार की आवश्यकता वह समझता था। इसलिये उसने साहस और प्रोत्साहन का मंत्र अपनी प्रजा को दिया। उसकी आवाज पर लोग हजारों की संख्या में जुट गये और दीवार बनने लगी।

इतना ही नही, चिंग ने अपने साम्राज्य के प्रत्येक हिस्से से इंजीनियरो और हजारों की संख्या मे मजदूरों को आमन्त्रित किया। प्रत्येक व्यक्ति के लिये इसमें कार्य करना आवश्यक कर दिया गया था। यहाँ तक कहा जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के पास कोई किताव पाई गई तो उसे चार वर्षों तक दीवार के निर्माण मे कड़े श्रम करने की सजा दी जाती थी। चिंग यद्यपि दयालु और प्रजा पालक था, पर इस दीवार को लेकर वह बुद्धि शून्य और अन्धा बन गया था। इस मामले में उसे न्याय और अन्याय में कोई अन्तर नहीं दिखाई पडता था। इसलिये ऐसे लोगो को भी जो विद्या प्रेमी थे और पढना चाहते थे वह एक साधारण मजदूर की तरह दीवार के निर्माण कार्य में ईट और पत्थर ढोने के लिये लगा देता था। उसके कारिन्दे भी लोगों पर बहुत अधिक अत्याचार करते रहते थे। दिन-रात एक करके लोग काम में लगे रहते तब भी उन्हें दोनों समय सूखी रोटियां भी खाने के लिये नसीब न होती थीं। कितने ही लोग तो भूख से तड़प-तडप कर इस दीवार की नीव मे गड गए या समुद्र की लहरों में समा गए थे। पर लोगों की इस दयनीय अवस्था पर चिंग ने कभी गम्भीर होकर नहीं सोचा। 'दीवार! दीवार!!' रात दिन उसे इस दीवार की धुन बनी रहती थी। वह चाहता था कि जल्दी से जल्दी यह दीवार तैयार हो जाय, पर इतना महान कार्य जल्दी होने वाला नहीं था। जो कारीगर इसकी मजबूती, ऊँचाई आदि की जाँच करते थे, वे इस मामले में बडे सतर्क थे। जहा कही भी दीवार में उन्हें कोई त्रुटि नजर आती तो वे उसे तोडकर फिर से नये सिरे से उसे बनवाते थे।

हाल में एक अग्रेज लेखक मि. गेयल ने इस महान दीवार के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है—"जब हम मनुष्य की महान कृतियों के सम्बन्ध में बारंबार सुनते हैं, पढ़ते हैं, तो स्वाभाविकत हममें उत्कंठा जागती है। पर जब हमें उसकी कृति को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है तो हमें उसे देखकर चकित होना पड़ता है। कदाचित् ही हमारी आँखों के सामने उनके वर्णन के पीछे का इतिहास सत्य रूप में आता है। पर चीन की इस महान् दीवार के विषय में ऐसी बात नहीं है। हमने इसकी महानता पर जितना भी

सुना य पढा था देखने पर मै इसे उससे कई गुना अधिक महान पाता हूँ चाहे हम इस 'महान् दीवार' को तारों के झिलमिल प्रकाश में देखे; चाहे चन्द्रमा की थिरकती चाँदनी मे अथवा सूर्य के दैदिप्यमान प्रकाश में, यह दीवार हमे बडे दैत्याकार पर्वत की तरह ही दिखाई पड़ती है। यह दीवार इतनी महान है, कि यदि समस्त संसार में विषुवत रेखा पर इसमें जितना सामान लगा हुआ है, उसको एकत्र किया जाय तो एक तीन फीट चौडी और आठ फीट ऊँची दीवार बन जायेगी। जब हम इसमें लगे हुये साधन एवं श्रम की कल्पना करते है तो अनायास ही हमें मान लेना पड़ता है कि इसके निर्माण में हजारों लोगो को पसीना, आँसू और खून बहाना पडा होगा। वास्तव में इसे 'खून की दीवार' कहना ही उचित होगा। क्योंकि जब हम उन लोगों की दर्दनाक कहानियाँ पढ़ते है, जिनके बाप-दादों को इस दीवार के बनाने में अपनी हड्डियो तक को लगा देना पडा था, तब हम सहज ही कल्पना कर सकते है, कि कितने बलिदानों की कब्र है यह दीवार।"

मि गोयल की कही गई यह उक्ति इस दीवार की महानता का एक स्पष्ट प्रमाण है। प्रकृति का यह नियम है कि विध्वंस की नीव पर ही निर्माण की ईटें जोडी जाती हैं। अत कोई आश्चर्य नहीं कि संसार प्रसिद्ध इस दीवार के निर्माण में चीन की तत्कालीन जनता को अपरिमेय बलिदान देने पडे हो। यदि ऐसा न हुआ होता तो आज चीन का वैभाव विशाल संसार के साम्ने गर्व से सिर ऊँचा किये खडा कैसे रहता।

एक विदेशी यात्री ने इस दीवार की भयंकरता और आकार-प्रकार को देखकर कहा था–'दूर से देखने पर चीन की यह दीवार' 'पत्थर के विशाल अजगर' की तरह भयानक मालूम पडती है। जिस तरह टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होकर इस दीवार का निर्माण किया गया है, वह सचमुच ही अजगर की भांति है। उर्दू में लोग इसे 'दीवार कहकहा' कहते हैं। 'कहकहा' शब्द विशालता का प्रतीक है।

चीन की राजधानी पेचिंग के उत्तर से होती हुई यह दीवार मध्य एशिया के रेगिस्तान तक चली गई है। पेचिंग के निकट का हिस्सा आज भी वैसा ही ठोस है, यानि इसे बने अभी अधिक दिन न हुए होगे। इसकी नीव के विषय में हम आपको यह बता दें कि इस दीवार की नींव प्रत्येक स्थान पर 25 फीट है। इसकी चौड़ाई भी, ऊपर की ओर कहीं दस फीट और अधिक हिस्सो में बीस फीट है। दीवार के दोनों तरफ ईट और पत्थरों की जुडाई की गई है। बीच में मिट्टी दी गई है। इसमें जो ईटे लगाई गई हैं उनकी मोटाई

भी 20 इंच से कम नही है। इसकी चौड़ाई इतनी है कि इस पर एक साथ गाडियों की तीन-तीन कतारें दौड़ सकती हैं।

चीन की इस महान् दीवार के निर्माण के पश्चात् यद्यपि तातार आक्रमणकारियों का उपद्रव प्राय सदा के लिये बन्द अवश्य हो गया, पर सम्राट के लिये अपने देश में ही अनेक दुश्मन पैदा हो गये। इस दीवार के निर्माण में साधारण जनता को जो बलिदान और त्याग करने पड़े थे, उससे उसका पूर्ण शोषण हो चुका था। चिंग के शासन के कडे नियम, दीवार के निर्माण की शीघ्रता में जनता के दुख-दर्द का भूल जाना, इन सबने मिलकर जनता मे असन्तोष की लहर पैदा कर दी थी। जिस प्रकार यह दीवार सम्राट चिंग के लिए विश्व प्रसिद्धि का सन्देश लाई उसी प्रकार यह उसके शासन की समाप्ति का प्रतीक भी बन गई। इधर दीवार पूरी हुई और उधर देश में क्रान्ति की आग जल उठी। उसके शासन में पीडित जनता ने 'हानवंश' के केयाटी नामक एक नवयुवक के नेतृत्व मे विद्रोह किया और इस वीर युवक ने चिंग के हाथों से राजसत्ता की बागडोर छीन ली।

चीनी भाषा में इस महान् दीवार को 'वानली-चुंग' कहते हैं। इसका अर्थ होता है 3400 (तीन हजार चार सौ) मील लम्बी दीवार। इससे इस बात का पता चलता है कि प्रारम्भ में इस दीवार की लम्बाई 3400 मील होगी। पर ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर 1500 मील लंबी दीवार की पुष्टि तो होती ही है। अब इस दीवार की लम्बाई 1250 मील की ही रह गई है। संभवत: चिग और केआटी के बाद के चीनी सम्राटों ने इसके कुछ हिस्सों से इस दीवार को छोटी करवा दी हो। अथवा यह भी संभव है कि विदेशी आक्रमणों के फलस्वरुप यह दीवार एक ओर से ध्वस्त होती गई हो और इस तरह इसकी लम्बाई कम होती चली गई हो। चाहे जो भी कारण रहा हो हमें इसका प्रमाण कहीं नहीं मिलता है। चीनी क्षेत्रों में इस दीवार के सम्बन्ध में कितने ही लोक गीत भी प्रचलित हैं। इन लोक गीतों में दीवार को चीन के लिए 'वरदान' और 'अभिशाप' दोनों ही का रूप दिया गया है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि चीनी जनता में जितनी श्रद्धा इस दीवार के लिये है उतनी ही घृणा और वेदना भी उनके हृदय के एक कोने मे इस दीवार के लिए ... है।

सरकार के पहले च्यॉगकाई शेक ने इस दीवार को जहाँ-तहाँ से मरम्मत करवाने का काम शुरू करवाया था। परन्तु तभी देश मे भयंकर जनक्रान्ति फैल गई। इस क्रान्ति की अग्नि से हिमालय सी दृढ यह दीवार भी प्रभावित हुए बिना नही रही। जहाँ-तहाँ इस दीवार को बहुत अधिक क्षति पहुँची। पर इससे दीवार की महानता में कोई अन्तर नहीं आया।

सम्राट केआटी के शासन के पश्चात् और भी कितने सम्राट चीन की गद्दी पर बैठे। चिंग द्वारा बनवाई गई यह रक्षात्मक दीवार उसके बाद के सम्राटों के लिए वरदान सिद्ध हुई। उत्तर के आक्रमणकारियों से चीन सदा-सदा के लिए मुक्त हो गया था। परन्तु इतने पर भी इस देश की संपदा विदेशियों के लिए बराबर आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनी रही। जब तब चीन के दूसरे अन्य हिस्सो से इस देश पर विदेशी आक्रमण करते रहे। किन्तु यह दीवार बराबर सशक्त प्रहरी की भाँति अपने देश की रक्षा करती रही। पुर्तगाल एवं डचो ने कितनी ही बार इस भूमि पर धावा बोला, पर बराबर ही उनके संघातक वार दीवार के मजबूत पत्थरो से टकरा कर वापस लौट गये। जापानियो का भी आक्रमण इस देश पर हुआ। उस समय भी इस महान् दीवार ने चीन की रक्षा की। निर्माण के पश्चात् बराबर संघर्षो में लीन रहने के फलस्वरुप कही-कहीं से दीवार ढह गई है। पर इतनी विशाल लम्बी चौडी दीवार के कहीं-कही से ढह जाने से ही क्या होता है। आज भी जिस अवस्था में यह दीवार है, अपनी विशालता और मजबूती के लिए संसार में दूसरा स्थान इसकी सानी नहीं रखता।

एक प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक ने इस दीवार को देखने के पश्चात् जो उद्‌गार व्यक्त किया है उसे पढ़कर हम सहज इसकी महानता का अन्दाज लगा सकेंगे। उसने लिखा है—

"जगत्-प्रसिद्ध इस दीवार में जितनी ईटें और पत्थर, सीमेन्ट और चूना आदि सामग्रियाँ लगी है, उनसे तो एक बड़े सुन्दर नगर का निर्माण हो सकता है। इन सामग्रियों से सैकडों आलीशान सुन्दर महलों का निर्माण हो सकता है।"

प्रसिद्ध विद्वानों की ऐसी उक्तियों से हमें यह पता चलता है कि चीन की इस महान् दीवार के बनाने में चीनी जनता ने किस अद्‌भुत पराक्रम का नमुना संसार के सामने रखा है। संसार मे न जाने कितनी दीवारें, कितने किले और कितनी आलीशान इमारते होंगी पर चीन की यह दीवार अकेली है इसकी तुलना मे ससार की दूसरी कोई इमारत अथवा दीवार आदि नहीं है

वास्तव मे इसकी महानता का वास्तविक मूल्यांकन वही कर सकता है जिसे इस दीवार को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। वर्णन चाहे जितना भी ठोस हो, चाहे जितने भी विशेषणों से सम्बोधित किया गया हो, पर वास्तविक जानकारी तो उसे देखने के बाद ही होती है। परन्तु हममें से सभी के लिये यह संभव नहीं है कि ससार की अद्भुत कला-कृतियों का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकें। इसलिये उनके सम्बन्ध में पढ़कर, अधिक से अधिक जानकारीप्राप्त कर के ही हमें संतुष्ट होना पडता है।

अभी कुछ ही दिनों पूर्व इस दीवार ने एक बार पुनः संसार को अपनीओर आकर्षित कर लिया था। इसके बारे में मिले समाचार ने संसार के कला-प्रेमियों एंव विद्वानों को आश्चर्य में डाल दिया था। बात ऐसी थी कि चीन की वर्तमान साम्यवादी सरकार के सामने इस दीवार को तुड़वा देने की एक योजना आई थी। इसकी पृष्ठ भूमि में वहाँ की सरकार का क्या उद्देश्य था, इसका तो पता नहीं चला। सिर्फ यही सुनने को मिला की चीन की सरकार इस दीवार को अपने देश की प्रगति में रुकावट समझती है इसलिये इसे तुडवा देने की योजना उसके सम्मुख आई है। सरकार के इस निर्णय का संसार के कोने-कोने से एक प्रकार का सामाजिक विरोध हुआ। चारों तरफ से सरकार के इस निर्णय पर आश्चर्य व्यक्त किया जाने लगा। अन्त में विश्व की भावनाओं की चीनी सरकार अवहेलना न कर सकी और दीवार को तुड़वाने की योजना उसने सदा-सदा के लिए स्थगित कर दी।

चीन का यह उन्नत भाल युगों-युगों तक ससार के सम्मुख गर्व से सीना ताने अपने पौराणिक गुण-गरिमा का गर्व लिए सदा-सदा के लिए खडा रहेगा।



मिश्र के पिरामिड

भारत और चीन की तरह ही ईजिप्ट (मिश्र) देश की संस्कृति और सभ्यता भी बहुत पुरानी है। ईजिप्ट को मिश्र भी कहते हैं। प्रागैतिहासिक काल में यह देश विश्व-सभ्यता का अनुपम उदाहरण माना जाता था। पर धीरे-धीरे समय के फेर ने इस देश को भी पतन की ओर ढकेल दिया और आज यह स्थिति है कि मिश्र एक महत्वहीन और कमजोर राष्ट्र समझा जाता है। आज मिश्र अपनी जरूरतो के लिए दुनिया के अनेक मुल्कों का मुहताज बना हुआ है। अब उस देश में उसकी पौराणिक कला-कृतियों एवं उसकी उन्नति, उद्भव के अवशेष मात्र बचे हुए है जो आज भी उसकी गौरवगाथा बडे-गर्व के साथ सुनाया करते हैं। इस देश में आज जो पुराने कला-कौशल और सभ्यता के कुछ चिन्ह विद्यमान हैं, उन्हें देखकर आजकल के बडे-बडे वैज्ञानिक, कला मर्मज्ञ एवं इंजीनियर भी दांतो तले अगुली दबाये बिना नहीं रह सकते।

मिश्र के पिरामिड इस वैज्ञानिक विकास के युग में भी बड़े-बडे इंजीनियरों और वैज्ञानिकों को खुली चुनौती देते हैं। 'पिरामिड' एक प्रकार के स्तम्भ को कहते हैं। इनके नीचे का हिस्सा चौड़ा होता है और ज्यों-ज्यों ऊंचा होता जाता है, त्यों त्यों पतला होता जाता है। अधिकतर पिरामिड चौकोर ही होते हैं। मिश्र में इस तरह के हजारो छोटे-बडे पिरामिड हैं। इतिहास के लेखकों का मत है कि पुराने जमाने में जो राजा मिश्र में राज्य करते थे, वे अपने लिए मृत्यु से पूर्व ही कब्र बनवा लेते थे। इन्हीं कब्रों को पिरामिड कहते हैं। वैसे तो मिश्र में जहाँ तहाँ हजारों पिरामिडे देखने को मिलेंगी पर वहाँ पर 'गिजा' नाम का एक स्थान है, जहाँ तीन विशाल पिरामिड दिखलाई पडते हैं दूर से देखने पर ये ऊँचे बर्फ के पर्वतो की तरह जान पड़ते है ये ही

तीनो पिरामिड संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध एवं मनुष्य की अद्वितीय कृतियॉ वताई जाती हैं। पहाड के आकार के समान दिखलाई पडने वाले इन पिरामिडों के चारो तरफ रेगिस्तानी जमीन है। इनके चारों तरफ वहुत दूर-दूर तक वालू ही वालू नजर आती है।

वालू के रेगिस्तानी मैदान में विशाल-विशाल पत्थरो के वने हुए ये पिरामिड सचमुच में संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिक मस्तिष्कों को भी चक्कर मे डाले विना नहीं रह सकते। लोगों के लिये यह कल्पना करना भी असम्भव सा हो जाता है कि हम जैसे हाड-मॉस के बने आदमियो ने ही इनका निर्माण कर अपनी अद्वितीय वुद्धि और कार्य कुशलता का परिचय प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम जब इन पिरामिडो को विदेशियो ने देखा था, तो वे इन्हें मानवीय कृति समझने को तैयार ही नहीं थे। पर धीरे-धीरे उन्हें अपनी हार स्वीकार करनी पडी, उन्हें मानना पडा कि अब से हजारों वर्ष पूर्व भी लोगों में अद्‌भुत रूप से बौद्धिक बल एवं कार्य कुशलता मौजूद थी। कहते हैं कि इन पिरामिडो में जितने वजनी पत्थर लगे हुए है, उन्हें आजकल की वडी-वडी पत्थर ढोने वाली मशीनें अथवा क्रेने भी नही उठा सकतीं।

मिश्र के ये पिरामिड संसार के सामने एक महान आश्चर्य के रूप मे विद्यमान है। उस रेतीले रेगिस्तानी मैदान में इतने भारी-भारी शिलाखड किस प्रकार पहुॅचाये गये होगे एवं पुन उन्हें उठाकर इतनी ऊंचाई तक किस प्रकार पहुंचाया गया होगा, इन सब वातों को गंभीरतापूर्वक सोचने के पश्चात् वडे-वडे बुद्धिमानों का सिर भी चकरा कर रह जाता है।

पुरातत्त्ववेताओं का अनुमान है कि ये पिरामिड लगभग चार हजार वर्ष से भी पहले के बने हुए है। हजारो वर्ष बीतने के पश्चात् भी इन्हें देखकर ऐसा जान पडता है मानो ये अभी हाल के ही वने हुए हो। इन पिरामिडो के भीतरी हिस्सो मे जो रंगीन कारीगरी की गई है उनको देखने से मालूम पडता है कि इन्हे वने अभी वहुत अधिक दिन नहीं हुए है। भीतर की कारीगरी के वेल-बूटे आज भी वैसे ही चमक रहे हैं, जैसे वे चार हजार वर्ष पहले चमकते रहे होगे।

सबसे पुराने इतिहास लेखक हेरोडोट्स ने भी इन पिरामिडों का उल्लेख किया है हेरोडोटस ने जो इतिहास लिखा है उसमे वास्तव मे ग्रीक और फारस वालो के बीच के युद्ध का बयान है पर स्थान स्थान पर उसने

मिश्र के पिरामिड

भारत और चीन की तरह ही ईजिप्ट (मिश्र) देश की संस्कृति और सभ्यता भी वहुत पुरानी है। ईजिप्ट को मिश्र भी कहते हैं। प्रागैतिहासिक काल में यह देश विश्व-सभ्यता का अनुपम उदाहरण माना जाता था। पर धीरे-धीरे समय के फेर ने इस देश को भी पतन की ओर ढकेल दिया और आज यह स्थिति है कि मिश्र एक महत्वहीन और कमजोर राष्ट्र समझा जाता है। आज मिश्र अपनी जरूरतों के लिए दुनिया के अनेक मुल्कों का मुहताज बना हुआ है। अब उस देश मे उसकी पौराणिक कला-कृतियो एवं उसकी उन्नति, उद्भव के अवशेष मात्र बचे हुए हैं जो आज भी उसकी गौरवगाथा बड़े-गर्व के साथ सुनाया करते हैं। इस देश में आज जो पुराने कला-कौशल और सभ्यता के कुछ चिन्ह विद्यमान है, उन्हें देखकर आजकल के बडे-बडे वैज्ञानिक, कला मर्मज्ञ एवं इजीनियर भी दांतो तले अंगुली दबाये बिना नहीं रह सकते।

मिश्र के पिरामिड इस वैज्ञानिक विकास के युग में भी बड़े-बडे इंजीनियरों और वैज्ञानिकों को खुली चुनौती देते हैं। 'पिरामिड' एक प्रकार के स्तम्भ को कहते हैं। इनके नीचे का हिस्सा चौडा होता है और ज्यों-ज्यों ऊंचा होता जाता है, त्यो त्यों पतला होता जाता है। अधिकतर पिरामिड चौकोर ही होते हैं। मिश्र में इस तरह के हजारों छोटे-बडे पिरामिड हैं। इतिहास के लेखकों का मत है कि पुराने जमाने में जो राजा मिश्र में राज्य करते थे, वे अपने लिए मृत्यु से पूर्व ही कब्र बनवा लेते थे। इन्हीं कब्रों को पिरामिड कहते हैं। वैसे तो मिश्र में जहॉ तहाँ हजारों पिरामिडे देखने को मिलेंगी पर वहाँ पर 'गिजा' नाम का एक स्थान है, जहॉ तीन विशाल पिरामिड दिखलाई पडते है दूर से देखने पर ये ऊँचे बर्फ के पर्वतो की तरह जान पड़ते हैं ये ही

तीनों पिरामिड संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध एवं मनुष्य की अद्वितीय कृतियाँ बताई जाती हैं। पहाड़ के आकार के समान दिखलाई पड़ने वाले इन पिरामिडों के चारों तरफ रेगिस्तानी जमीन है। इनके चारों तरफ बहुत दूर-दूर तक बालू ही बालू नजर आती है।

बालू के रेगिस्तानी मैदान में विशाल-विशाल पत्थरो के बने हुए ये पिरामिड सचमुच मे संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिक मस्तिष्कों को भी चक्कर मे डाले बिना नहीं रह सकते। लोगों के लिये यह कल्पना करना भी असम्भव सा हो जाता है कि हम जैसे हाड-मॉस के बने आदमियों ने ही इनका निर्माण कर अपनी अद्वितीय बुद्धि और कार्य कुशलता का परिचय प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम जब इन पिरामिडों को विदेशियो ने देखा था, तो वे इन्हे मानवीय कृति समझने को तैयार ही नहीं थे। पर धीरे-धीरे उन्हे अपनी हार स्वीकार करनी पडी, उन्हें मानना पडा कि अब से हजारो वर्ष पूर्व भी लोगो मे अद्भुत रूप से बौद्धिक बल एवं कार्य कुशलता मौजूद थी। कहते हैं कि इन पिरामिडो में जितने वजनी पत्थर लगे हुए हैं, उन्हें आजकल की बडी-बडी पत्थर ढोने वाली मशीनें अथवा क्रेनें भी नहीं उठा सकती।

मिश्र के ये पिरामिड संसार के सामने एक महान आश्चर्य के रूप में विद्यमान हैं। उस रेतीले रेगिस्तानी मैदान में इतने भारी-भारी शिलाखड किस प्रकार पहुँचाये गये होंगे एवं पुन उन्हें उठाकर इतनी ऊंचाई तक किस प्रकार पहुचाया गया होगा, इन सब बातो को गंभीरतापूर्वक सोचने के पश्चात् बडे-बडे बुद्धिमानों का सिर भी चकरा कर रह जाता है।

पुरातत्त्ववेताओं का अनुमान है कि ये पिरामिड लगभग चार हजार वर्ष से भी पहले के बने हुए है। हजारो वर्ष बीतने के पश्चात् भी इन्हें देखकर ऐसा जान पडता है मानो ये अभी हाल के ही बने हुए हों। इन पिरामिडों के भीतरी हिस्सो में जो रगीन कारीगरी की गई है उनको देखने से मालूम पडता है कि इन्हें बने अभी बहुत अधिक दिन नही हुए है। भीतर की कारीगरी के बेल-बूटे आज भी वैसे ही चमक रहे हैं, जैसे वे चार हजार वर्ष पहले चमकते रहे होंगे।

सबसे पुराने इतिहास लेखक हेरोडोट्स ने भी इन पिरामिडो का उल्लेख किय है हेरो ोटस ने जो इतिहास लिखा है उसमे वास्तव मे ग्रीक और वालो के बीच के युद्ध का है पर स्थान स्थान पर उसने

तत्कालीन प्रसिद्ध नगरो, वहाॅ के निवासियो एवं लोगो के प्रशंसनीय कार्यो का भी विस्तार से उल्लेख किया है। हेरोडोट्स का इतिहास प्रामाणिक समझा जाता है। सर्वप्रथम तो इस देश के सम्बन्ध में सबसे पुराना इतिहास वही है और दूसरी बात हेरीडोट्स मे यह भी थी कि उसने जो कुछ भी लिखा है, उनके प्रमाण भी देने की उसने भरसक चेष्टा की है। जहाॅ-तहाॅ उसने यह भी लिख दिया है कि अमुक घटना उसने अपनी ऑखों देखी थी, एव अमुक बाते उसे किसीसे सुनने को मिली थीं। इस प्रकार उसका इतिहास पुष्ट प्रमाणो से भरा पडा है। हेरोडोट्स ने इन पिरामिडों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ये पिरामिड मिश्र के तत्कालीन राजाओं ने अपनी कब्र के लिए बनवाये थे।

संसार की आश्चर्यजनक वस्तुओ के सम्बन्ध में अनेकानेक भ्रांतियाॅ फैल जाती हैं। समय के परिवर्तन के साथ-साथ लोग उनके सम्बन्ध में तरह-तरह की धारणायें बनालेते हैं; किंवदन्तियाॅ और कहावतें प्रचलित हो जाती हैं। मिश्र के इन पिराम्डिो के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की कितनी ही किंवदन्तियाॅ भिन्न-भिन्न रूपो में प्रचलित हैं। कहते हैं कि मिश्र में पुराने जमाने मे यह प्रथा थी कि जो राजा मरता था उसका शव ऐसे ही पिरामिड मे दफना दिया जाता था। उसके साथ ही उसके परिवार के सदस्य, दरबारी, राज्य के अन्य कर्मचारी तथा अन्य प्रमुख लोग, जो राजा के प्रति सम्मान रखते थे, राजा के मृत शव के साथ ही इन पिरामिडो में घुस जाते थे। इसके पश्चात् पिरामिड का द्वार बन्द कर दिया जाता था और बाहर से सीमेंट और चूने से उसकी जुड़ाई कर दी जाती थी। पर ऐसी किंवदंतियों का कोई ऐतिहासिक आधार हमें पढने को नही मिलता है। हेरोडोट्स ने भी अपने इतिहास मे इसकी चर्चा नही की है। हाॅ, यह सत्य है कि राजा पिरामिड अपने लिए ही बनवाता था। उसमे दो कमरे (किसी-किसी मे तीन भी मिले हैं)होते थे। एक तो स्वयं राजा के लिए होता था तथा और दूसरा संभवत उसकी रानी के लिए होता था। मरने के बाद राजा को पिरामिड के उसी कमरे में रख दिया जाता था। उसके शव के साथ अपरिमित धनराशि भी रखी जाती थी। इसके बाद पिरामिड का दरवाजा बन्द कर दिया जाता था। रानी की मृत्यु होने के पश्चात् रानी का शव भी पिरामिड के उस दूसरे कमरे में रखा जाता था। तब कहीं पिरामिड का द्वार स्थायी रूप से बन्द किया जाता था

बहुत दिनों के प्रयत्नों के पश्चात् इन पिरामिडों के बारे में सही जानकारी का पता चला है। बड़े-बड़े अन्वेषक और वैज्ञानिक इसमें घुस कर भीतर गए और उन्होंने मृतकों के शव देखे। जो मृत शव प्राप्त हुए उन्हें देखने से पता चलता है कि ये मुर्दे अभी कुछ दिनों के ही होंगे। पता नहीं किस मसाले में भरकर इन मुर्दों को रखा गया था कि हजारो वर्षो पश्चात् भी वे ज्यों के त्यो पाये गये हैं। उनमें कहीं से भी कोई खराबी अथवा दुर्गन्ध आदि नही आती थी। इन मुर्दो को देखने से उस जमाने के आदमियों के विषय में बहुत कुछ जानकारी मिली है। उन दिनों के लोग भी आज के जैसे लोगो की तरह ही होते थे। वे न तो अधिक लम्बे होते थे और न औसत से अधिक छोटे ही होते थे। उनकी चौडाई भी आजकल के आदमियों की तरह ही होती थी। उस जमाने के और आजकल के लोगों के आकार प्रकार में कोई खास अन्तर नहीं होता था।

हेरोडोट्स के इतिहास में कथित पिरामिडो का उल्लेख सन्तोषप्रद रूप में मिलता है। यह इतिहास ईसा से लगभग 445 वर्ष पूर्व लिखा गया था। इससे पुराना इतिहास उस देश में अन्य कोई नहीं है। संसार भर मे यह इतिहास अपनी प्रामाणिकता को लेकर अत्यन्त ही प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। इसी इतिहास में हेरोडोट्स ने लिखा है—

''मोम्फिस नगर के पुजारियों ने मुझे बताया कि सबसे बडा पिरामिड मिश्र देश के चिआप्स नामक बादशाह ने अपनी कब्र के लिए बनवाया था। इसका निर्माणकाल ईस्वी सन् से 900 वर्ष पूर्व नियत किया गया है। एक लाख मजदूरों ने प्रतिदिन काम करके बीस वर्षो में इस पिरामिड को बनाया था। इसके बनवाने वाले बादशाह चिआप्स का मृत शव पिरामिड के नीचे के कमरे में रखा गया। इस कमरे के चारो ओर एक सुरग भी है। इस सुरंग मे होकर नील नदी का पानी पिरामिड के नीचे-नीचे बहा करता है।''

हेरोडोट्स के उपरोक्त कथन के ऐतिहासिक प्रमाण है। इसे पढ़ने से हमे आसानी से इस कथित पिरामिड की विशालता का अन्दाज लग जाता है। इस पिरामिड की नींव 550000 वर्ग फीट के घेरे में रखी गई है। इसकी बनावट चौकार रूप में है। इसकी प्रत्येक दीवार 255 गज लम्बी है। इसकी ऊचाई 158 गज की है। इतिहासकारों का कहना है कि सर्वप्रथम जब यह पिरामिड बना था तो इसकी ऊँचाई 167 गज थी पर [illegible] में इसके ऊपर के दो खड गिर पड़े इस प्रकार अब इसकी ऊचाई केवल 1[illegible] की

ही रह गई है। इस पिरामिड की बनावट ऐसी कुशलतापूर्वक की गई है कि देखते ही बनता है। जान पडता है , एक चबूतरे पर दूसरे चबूतरे का निर्माण किया गया हो। ऊपर का हर चबूतरा अपनी नीचे के चबूतरे से छोटा होता गया है। इससे यह पिरामिड दूर से देखने पर सीढियो की एक कतार सा जान पडता है। चबूतरो के निर्माण की जो शैली है, वह ठीक सीढियो की तरह ही है। इससे ऊपर चढने में बडी आसानी होती है। इस प्रकार की इसमे 203 सीढियाँ है। ज्यो-ज्यों हम ऊपर चढेंगे हमें सीढियो की चौडाई कम होती नजर आयेगी। सबसे ऊपरी सीढी की चौड़ाई लगभग 4 फीट 9 इंच की है।

इस पिराम्डि के निर्माण के साधनो के सम्बन्ध मे इतिहास लेखक हेरोडोटस ने लिखा है–

"मोथ्स्फिस के पुजारियों से मैंने पूछा कि यह पिरामिड किस प्रकार बनाये गये? इसके उतर में मुझे बताया गया कि कारीगरों ने इसके लिए लकड़ी की एक मशीन बनाई थी। इसी मशीन की सहयता से चबूतरो का निर्माण होता गया। पहला चबूतरा बन गया तब लकडी की मशीन को पहले चबूतरे पर रखा गया और उसी के सहारे से दूसरे चबूतरे पर पत्थर चढाये गये।"

जिस काम को आज की बडी-बडी भीमकाय लोहे की बनी हुई मशीनें और क्रेने भी सभवत नहीं कर सकती है, उसे लकडी की मशीन ने किया। जितना आश्चर्य और कौतूहल उन पिरामिडों को देखने से उत्पन्न होता है, उससे कम यह जानकर नही होता कि विश्व के इस आश्चर्यजनक निर्माण का एक बडा श्रेय लकडी की मशीनों को है। कहने, सुनने एव पढने में यह बात हमें एकदम मामूली सी जान पडती है। पर उन लकडी की मशीनो से काम लेने में जिन कठिनाईयों का सामना कारीगरो को करना पडा होगा, वह हमारी कल्पना से बिल्कुल परे है। लकडी की मशीन के सहारे, वृहदाकार शिला-खंडो को ऊपर की ऊँचाई तक ले जाना एवं निश्चिंत नीव पर बैठाना तथा तीस-तीस फीट की शिलाओ को लकडी की मशीन से दो-सौ गज की ऊंचाई तक पहुँचाना कितना मुश्किल काम है, इसे हम आसानी से समझ सकते हैं।

पिरामिडों के इन शिलाखण्डों की जुड़ाई इतनी कुशलता से की गई है कि कहीं नोक भर का भी अन्तर देखने को नहीं मिलता जब तक आदमी

ध्यान से इनके समीप सटकर नहीं देखता तब तक उसे पता ही नहीं चलता कि ये पत्थर एक दूसरे से जोडे गये है। इतनी ऊची इमारत मे कहीं पर कोई त्रुटि देखने को नही मिलती। एक भी पत्थर कही रत्ती भर टेढ-मेढे रूप मे नही लगा हुआ है। अलग से देखने पर मालूम पडता है, पत्थर की यह इमारत ईश्वरीय कृति का रूप है। सभवत परमात्मा भी भूलचूक कर जाय, पर जिन कारीगरो ने इस पिरामिड को बनाया है उन्होंने कहीं भूल नही की। सीमेंट और चूने की जुडाई ऐसी हुई है कि उसने एक पत्थर को दूसरे से एकदम चिपका-सा दिया है।

इस पिरामिड के पत्थरों की ऐसी गढन है; इतनी खूबी से कारीगरो ने इसे तरासा है कि इनमें कहीं भी रूखापन देखने को नहीं मिलता। उन पर ऐसी वार्निशें की गई है कि उनकी चमक और चिकनाहट को देखकर आजकल के बडे-बडे वैज्ञानिको का सिर भी चकरा जाता है।

गिजा का दूसरा पिरामिड, जो पहले वाले पिरामिड से कुछ छोटा है, पर उससे कम आश्चर्यजनक नही है। इसकी ऊँचाई 152 गज है और व्यास 228 गज। तीसरा पिरामिड जो पहले और दूसरे पिरामिडो से छोटा है, पर सौन्दर्य में दोनों से बढा-चढ़ा है, 58 गज ऊँचा है और इसकी नींव का घेरा 110 गज है। इस पिरामिड के सम्बन्ध मे कहते है कि यह एक विशेष प्रकार के पत्थर से बनाया गया है। यह पत्थर इसी के लिये विशेष कर किसी खास स्थान से लाया गया था। इसमे अब जहाँ-तहाँ से कुछ खराबियाँ आने लगी हैं। किन्तु अभी भी यह पिरामिड अन्य दोनो से अधिक सुन्दर लगता है।

पहले ही कहा जा चुका है कि सबसे बडे तथा प्रथम पिरामिड को मिश्र के बादशाह चिआप्स ने अपनी कब्र के लिए बनवाया था। दूसरे पिरामिड को जिसकी ऊंचाई एवं व्यास पहले से कम है, चिआप्स के छोटे भाई सिफरेन ने अपनी कब्र के लिए बनवाया था। चिआप्स के मरने के पश्चात् सिफरेन ही मिश्र की गद्दी पर बैठा था। तीसरे पिरामिड के सम्बन्ध में, जो पहले दोनो पिरामिडो से छोटा है, कहते हैं कि चिआप्स के पुत्र पिसेरिनस ने अपनी कब्र के लिए बनवाया था।

जहाँ पर ये तीनों पिरामिड बने हुए हैं वहाँ और भी कई छोटे-बडे पिरामिड है। इस स्थान को लोग मिश्र के बादशाहो का कब्रगाह कहते है।

स्थानीय लोगो की धारणाये बनी हुई हैं कि जिस बादशाह ने जितने ही अधिक दिनों तक राज्य किया, उसने अपने लिए उतना ही बड़ा पिरामिड (कब्र) बनवाया। इस देश के आदि निवासियों के पिरामिड मुसलमानो के मकबरो की तरह ही हैं। इनमे कई पिरामिडो मे ईस्वी सन् के चौदह-पन्द्रह सौ वर्षो पहले के निशान भी पाये जाते हैं।

जब पश्चिम के राष्ट्र वालों का मिश्र आदि देशो मे आवागमन शुरू हुआ तभी से लोगो में इन पिरामिडों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की उत्कठा बढती गई थी। प्रारम्भ में लोगों का ख्याल था कि ये पिरामिड भीतर से ठोस हैं। पर धीरे-धीरे उनको वास्तविकता का पता चलता गया और लोगों ने जाना कि भीतर से ये पिरामिड खोखले हैं और इनमें प्रवेश के लिए द्वार भी बने हुए है। इसके बाद तो वैज्ञानिकों ने इसमें अपनी खोज शुरू कर दी।

बडे-बडे वैज्ञानिकों एवं अनुसधान कर्ताओं ने इन पिरामिडो में जाना और खोज करना शुरू किया। सबसे बड़े पिरामिड का रास्ता सत्रह से 47 फीट की ऊचाई पर है। इसके दरवाजे की लम्बाई एवं चौड़ाई साढे तीन फीट है। भीतर की ओर प्रवेश करने पर यह लगभग एक सौ फीट तक ढालू होता चला गया है। इसके पश्चात् दाहिनी तरफ रास्ता मुड़ाता है और जहाँ पर मोड समाप्त होता है, वहीं से चौडाई की शुरूआत होती है। काफी दूर चलने पर सर्वप्रथम एक कमरा मिलता है। यह कमरा लगभग बारह फीट ऊंचा है और इसकी लम्बाई चौड़ाई 17 × 17 फीट के लगभग है। लोगों का कहना है कि यह कमरा रानी के लिए बनाया गया था। इसी कमरे से होकर एक मार्ग आगे की ओर गया है। एक सौ बीस फीट ऊपर चढने पर एक और कमरा मिलता है। वह कमरा पहले वाले से अधिक ऊँचा और अधिक लम्बा-चौडा है। इसकी ऊंचाई बीस फीट है तथा लम्बाई-चौडाई 37 × 17 फीट के लगभग है। इस कमरे की दीवारें संगमरमर पत्थर की बनी हुई हैं और इनका रंग एकदम लाल है। इस पर जो वार्निश की गई है उसकी चमक आज भी वैसी ही है। इसकी दीवारों मे जो पत्थर लगाये गये है उनमें कही से कोई जोड नहीं दिखाई देता है—नींव से छत तक में एक ही प्रकार का पत्थर लगा हुआ है। छत भी सगमरमर की ही बनी हुई है और उसका रग भी एकदम लाल ही है। इस कमरे को लोग राजा का कमरा कहते हैं। इसी कमरे में मिश्र की सबसे बडी बादशाहत का बादशाह चिआप्स दफनाया गया था। राजा

के इस कमरे के शिखर पर एक कब्र भी बनी हुई है जिसकी लम्बाई सात फीट एवं चौडाई तीन फीट की है।

जिन लोगों ने पिरामिड में घुस कर इन कमरों का पता लगाया है, उनको जगह-जगह कुछ लेख आदि भी दीवारो पर खुदे हुए मिले हैं। उस समय तक उन्हें इस पिरामिड में केवल दो ही कमरो का पता चला था। बहुत खोज के पश्चात् भी वहाँ और किसी कमरे के होने का पता उन्हें नही चल सका।

सन् 1817 ईस्वी में इटली देश के निवासी कप्तान कविग्लिया ने इस पिरामिड में प्रवेश किया और इसकी पूरी तरह से जांच पडताल की। बहुत प्रयत्नो के पश्चात् उसे एक तीसरे कमरे का पता चला। इस कमरे की ऊँचाई पन्द्रह फीट तथा लम्बाई-चौडाई 66 × 27 फीट की है। इस कमरे के बीच मे एक गड्ढा भी मिला है, जिसकी गहराई पाँच फीट बताई जाती है । पर वह गड्ढ़ा बिल्कुल खाली पड़ा हुआ था। उस गड्ढे में अथवा उस कमरे में कोई शव नही मिला। इसलिये यह अंदाज लगाना कठिन हो गया कि वह कमरा किसके लिये बना था और वह गड्ढा क्यों खोदा गया था। तरह-तरह की कल्पनायें लोग इसके विषय में करते हैं, परन्तु अभी तक कोई प्रामाणिक बात सामने नहीं आई है। अत यह तीसरा कमरा अभी तक कल्पना का विषय ही बना हुआ है।

खोज करने वालों ने दूसरे और तीसरे पिरामिडों का रास्ता भी ढूंढ निकाला है। इनमें भी कमरे पाये गये हैं। दूसरे पिरामिड के एक कमरे की ऊँचाई 23 फीट तथा लम्बाई व चौड़ाई 46 × 16 फीट की है। इस कमरे में भी एक कब्र है। इसमें हड्डियाँ भी पाई गई हैं। इस कमरे मे अरबी में लिखा एक लेख भी पाया गया है। इससे लोगों का अनुमान यह है कि बहुत पुराने काल में अरब का कोई बादशाह इसमें घुसा था और इसके प्रमाण में वह यह लेख छोड गया था। पहले पिरामिड में पाये जाने वाले तीनों कमरो की दीवारों पर भी अरबी ओर रोमन लिपि में नाम लिखे हुए पाये गये हैं। इनसे पता चलता है कि पुराने जमाने में रोम और अरब के निवासी इनमें प्रवेश कर कमरो का पता लगा चुके थे।

सन् 1834 में हावर्डवाइज नाम के एक बहादुर अंग्रेज ने तीसरे पिरामिड का रास्ता ढूंढ निकाला था। इसमें भी उसे सुन्दर संगमरमर का

वना हुआ एक कमरा मिला है। इस पिरामिड मे उसे 3500 वर्ष पुराना बादशाह नेसीनस का कफन और उसका शव मिला था जिसे उसने विलायत के अजायबघर मे भिजवाया था।

इन तीनों पिरामिडों में भीतर के हिस्से में मिश्र की तत्कालीन भाषा मे अभिलेख आदि लिखे हुए मिले है। जिस लिखावट में ये लेख है, उसे ऐरलोग्राफी कहते हैं। इनके आकार अक्षरों जैसे नहीं हैं। अक्षरो की जगह चित्र वने हुए हैं। इसी लिखावट में पिरामिड की भीतरी दीवारों पर लेख लिखे गये हैं। वडे-बड़े यूरोपीय विद्वानों ने इस लिखावट का अर्थ समझने में वर्षो परिश्रम किया है। उन्हें इसमें बहुत कुछ सफलता भी मिली है। इन लेखो से मिश्र के इतिहास की जानकारी में बड़ी सहायता मिल रही है।

इन पिरामिडों के बनाने में जिस पत्थर का उपयोग किया गया है उसे आकूत पत्थर कहते हैं। सन् 1166 मे मिश्र के सुल्तान सलाद्दीन के पुत्र ने गिजा के छोटे पिरामिड को खुदवाना शुरु किया था। वह इसकी खुदाई इसलिये करवा रहा था ताकि उसकी सामग्री से एक नया महल अपने निवास के लिये बनवा सके। इस काम के लिए उसने फौज की सहायता ली। एक वडी फौज लगातार एक मास तक पिरामिड की खुदवाई का काम सरगर्मी के साथ करती रही। एक माह तक बराबर खोदने के बाद वहॉ पत्थरो का एक पहाड सा खड़ा हो गया। परन्तु आश्चर्य यह है कि वह पिरामिड आज भी वैसा ही खडा है। इतनी खुदाई होने पर भी उसमें कहीं से कोई अन्तर नही आया है।

इन पिरामिडों के रहस्यों का पता लगाने में कितनो को अपने प्राणो की आहुति देनी पडी है। इनके भीतर न तो कही से कोई प्रकाश जा सकता है और न इनमे हवा का प्रवेश ही संभव है। ऐसी परिस्थिति मे इनमे जो लोग घुसे हैं उन्हें अपरिमित कठिनाइयो का सामना करना पडा है। खोज करने वाले हाथो मे मशाललेकर इसमे प्रवेश करते और अत्यन्त कठिनाईयों का मुकाविला करते हुए अपना मार्ग खोजते। कितनों ने इसीधुन मे अपनी तन्दुरुस्ती से भी सदा के लिए हाथ धो लिया। पर यदि उनमें त्याग की यह भावना न होती तो संभवतः संसार आज इतिहास के इन अनमोल पृष्ठो को पढ़ने से वंचित रह जाता; मनुष्य की इन अद्भुत कला-कृतियों का उसे पता तक न चल पाता।

मिश्र के ये पिरामिड ससार के महान् आश्चर्यो में विशिष्ठ स्थान रखते है। हेरोडोट्स ने लिखा है–

''मुझे वताया गया है कि इन पिरामिडो के वनाने मे अनेक वडे-वडे कारीगर एव कला-कौशल जानने वालो के अतिरिक्त एक लाख मजदूरो ने तीस वर्षो तक काम किया था। प्रत्येक तीन वर्ष पर आदमी वदल दिये जाते थे। तीन वर्ष पूरे होते ही सब आदमी निकाल दिये जाते थे और उनकी जगह पर नये सिरे से एक लाख आदमी रखे जाते थे।''

पिरामिडो की भीतरी दीवारो पर लिखे लेखो से पता चलता है कि इनके बनाने वाले मजदूरों को प्रतिदिन रोटीऔर प्याज बांटा जाता था। इस प्रकार एक दिन में कई हजार दीरम (अरव देश का सिक्का) खर्च हो जाता था। काम करने वाले मजदूरो को बादशाह की तरफ से कोई मजदूरी नही दी जाती थी। उनसे बेगार ली जाती थी। बादशाह को काम करने से कोई इनकार नही कर सकता था। जो शिथिलता दिखलाते थे उन पर बादशाह के कारिन्दे कोड़े बरसाते थे। इस प्रकार आंतक और भय के बदले में इनमें मजदूरो से काम लिया जाता था।

मिश्र के बादशाहों की ये कब्र जनता के खून से वनी हुई है। ये यद्यपि पुराने जमाने के इतिहास के स्तम्भ है, पर वास्तव में मानवी श्रम और कार्य-कुशलता से आश्चर्यजनक उदाहरण है।

❑❑❑

भारत का ताज महल

संसार की इमारतों मे ताजमहल मनुष्य की अद्‌भुत कृति माना जाता हैं। अभी तक संसार के किसी भी देश में इसकी टक्कर की दूसरी इमारत नहीं बन पाई है। आगरे का यह ताजमहल संसार के लोगों के लिये आकर्षण का केन्द्र है। यही कारण है कि संसार प्रसिद्ध महान् आश्चर्यो में भारत के इस ताज महल का नाम भी सम्मिलित है। सच तो यह है कि इस अद्‌भुत विशाल इमारत की शोभा और सौन्दर्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इसे एक बार देखना बडा आवश्यक हो जाता है। वर्णन चाहे जितना भी सजीव क्यों न हो उससे 'ताज' के सौन्दर्य और शोभा का यथार्थ ज्ञान कभी नहीं हो सकता है।

भारत के प्रसिद्ध मुसलमान सम्राट अकबर के पौत्र शाहजहॉ ने अपनी पत्नी 'मुमताज महल' की याद में 'ताजमहल' का निर्माण करवाया था। उसने अपनी और अपनी बेगम की समाधि के रूप में संसार को एक ऐसी इमारत भेंट की जिसकी जोडी आज तक ढूँढने पर भी नहीं मिलती।' इसके बारे में कवि ने कहा है कि

''ताज है दुनिया का नगमा,
प्यार का सुन्दर सुमन।
दो दिलो की दास्तां यह,
प्यार का अनुपम चमन॥''

मुमताज महल जहॉगीर की पत्नी थी। वह नूरजहॉ की भतीजी थी। 'रिपोर्ट ऑन दी आर्चीलॉजिकल रूल्स आफ इंडिया' मे मिस्टर ए सी एला कैरूलेली ने लिखा है कि मुमताज महल वजीर आजम नवाब आसिफ खां की बेटी थी उसका नाम बानू बेगम भी था मुमताज महल का पहला नाम

आर्जूमन्द बेगम था। जहाँगीर के सबसे ज्येष्ठ पुत्र शाहजहाँ ने आर्जूमन्द के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उससे शादी की थी। पहले आर्जूमन्द बेगम का विवाह जमाल खा से हुआ था। उसी के घर पर एक दिन शाहजहाँ ने उसे देखा था और उसके रूप पर ऐसा मुग्ध हुआ कि उससे विवाह करने की बात मन ही मन में ठान ली। एक बार शाहजहां ने बानू को अपने घर बुलाया और काफी देर तक उसे रोके रखा। बाद में जब वह घर गई तो अधिक रात बीत चुकी थी। जमाल खा को उस पर सन्देह हुआ और उसने उसी समय उसे अपने घर से निकाल दिया।

यही बानू जिसे उसके पति जमाल खां ने रात को अपने घर से निकाल दिया था, आगे चलकर भारत के सम्राट की पत्नी बनी और उसके समाधि रुपी इस मन्दिर ताजमहल ने सारे ससार को आश्चर्य मे डाल दिया। उस रात क्या उसने कभी कल्पना भी की होगी कि भविष्य में उसके सौन्दर्य की पताका युगों-युगों तक लहराती रहेगी और वह अमर बन जायेगी?

दूसरे दिन सुबह जब शाहजहाँ को जमाल खां की कठोरता का पता चला तो उसे बड़ा दुःख हुआ। क्रोध से वह पागल हो उठा और उसने जमाल खां को हाथी के पैरों तले कुचलवा देने की आज्ञा दी। पर मुमताज महल के आग्रह पर उसने अपनी यह आज्ञा वापस ले ली। पर इतने पर भी जमाल खां का बानू पर से सन्देह दूर नही हुआ और वह बानू को स्वीकार करने के लिये तैयार नही हुआ शाहजहाँ तो यह चाहता ही था। उसने तत्काल मुसलमानी रीति-रिवाजों के मुताबिक बडे धूमधाम के साथ बानू से शादी की। शाहजहाँ अर्जूमन्द बेगम को बहुत प्यार करता था पहली झलक में ही उसने अपना हृदय कमलनिकाल कर अपनी प्रेयसी के चरणो पर चढा दिया। यह उस जब समय भारत में स्त्रियाँ पुरुषों के लिए एकमात्र खिलौने होती थीं। ऐसे समय मे शाहजहाँ का ऐसा अद्भुत प्यार वास्तव में अनोखा था।

शाहजहाँ और उसकी बेगम मुमताज महल के अनोखे प्यार का प्रतीक यह ताजमहल विश्व के प्रेमियों में प्रेम की पवित्रता की प्रेरणा भरता है। संसार का कोई भी व्यक्ति, चाहे वह लेखक हो, कहानीकार हो, कलाकार हो, राजनीतिज्ञ हो अथवा वैज्ञानिक हो या साधारण जनता के बीच का कोई व्यक्ति हो भारत आने पर ताज महल को देखने की उत्कठा को रोक नहीं सकता। संसार के कोने-कोने में ताजमहल के सौन्दर्य की कहानी फैली हुई है। यह ताज महल ऐसा लगता है मानो आदमी ने सृष्टि के प्रांगण में कोई देवलोक का क्रीडा भवन स्थापित कर दिया हो

आइये, हम एक बार फिर इस ताज के निर्माण के विगत पृष्ठों को उलट कर देखें। जो स्त्री भारत सम्राट की अर्धांगिनी बनी, जिसका समाधि मन्दिर विश्व में आश्चर्य की वस्तु बनकर खड़ा है, उस रात जब वह उसके प्रथम पति के घर से निकाली गई थी, उसे कितने कष्ट सहन करने पड़े होंगे पर विधि की यही रचना थी, संसार के सम्मुख अनोखा आदर्श प्रस्तुत करना था, तभी तो दोनों प्रेमियों के मिलन की भूमिका उस रात में तैयार हुई थी। यदि जमाल खाँ को अपनी पत्नी पर सन्देह न हुआ होता तो संभव था आर्जूमन्द बेगम शाहजहाँ को न मिल पाती और संसार को ताजमहल का सौन्दर्य देखने को न मिलता।

कालातर मे जहाँगीर की मृत्यु हुई। शाहजहां ही उसका सबसे बड़ा पुत्र था इसलिये गद्दी पर बैठने का हकदार वही था। गद्दी पर बैठने के बाद ही उसने अपनीप्यारी बेगम को मुमताज की उपाधि दी। शाहजहां के महल में आर्जूमन्द का रूप पहले से कई गुणा खिल उठा।

मुमताज महल से शाहजहा के चार लड़के और तीन लड़कियाँ पैदा हुई। लोगों का कहना है कि मुमताज को अपने मृत्यु की जानकारी पहले ही हो गई थी। मृत्यु के आगमन के पूर्व ही उसे इसका आभास हो गया था। इसकी कल्पना करके कभी-कभी वह अत्यधिक विह्वल हो उठती थी। उसे अपने प्राणो से अधिक प्रिय पति को त्याग कर सदा के लिए चला जाना पड़ेगा, इसका विचार आते ही उसका हृदय आर्त्तनाद कर उठता था। अपनी इसी व्यग्रता में तो एक दिन उसने शाहजहाँ से पूछा, "क्या मेरे मरने पर आप मेरी याद करेगे? संभव है मेरे मरते ही आप किसी दूसरी स्त्री के साथ शादी कर लें? क्यों, है न सही?" शाहजहाँ के लिये मुमताज का वह प्रश्न अस्वाभाविक तथा अनापेक्षित था। उसने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उसके प्राणो से भी अधिक प्रिय वस्तु मुमताज उसे छोड़कर संसार से चली जायेगी। और मुमताज का ऐसा सोचना कि वह दूसरी शादी कर लेगा, उसके पवित्र एव दृढ प्रेम के प्रति अविश्वास प्रकट करना था। उसने साहस के साथ उत्तर दिया, "यदि परमात्मा का मुझ पर इतना गहरा प्रकोप हुआ कि वह तुम्हें मुझसे छीन ले, तो भी क्या? आज भी शाहजहाँ तुम्हारा है, और तुम्हारे मरने के बाद भी तुम्हारा ही रहेगा। जिस हृदय पर तुम्हारे प्यार की गहरी छाप है वहाँ और किसी का प्रभाव कैसे पड सकता है? तुम्हारे मरने के बाद भी मेरे अन्तःकरण की सभी वस्तुएं तुम्हारी याद में झंकृत होती रहेगी ऐसी अवस्था मे किसी दूसरे की स्वर लहरियो को अलापने की उन्हे

फुर्सत ही कहा मिलेगी? तुम्हारा ऐसा सोचना सही नही है। जयपुर और राजपूताने से इसमे लगाने के लिए संगमरमर पत्थर मंगवाया गया था। कहते हैं एक गज लम्बे और एक गज चौडे चौकोर संगमरमर का मूल्य उस समय 4 रुपये लगता था। पीले रंग का जो पत्थर इसमे लगा हुआ है उसे नर्मदा नदी के तट से लाया गया था। इसकी लागत भी उतनी ही थी जितनी संगमरमर की थी। काला पत्थर संगमूसा चार-पहाडी नामक स्थान से मंगाया गया था। कहते हैं कि एक गज चौडे और एक गज लम्बे चौकोर पत्थर का मूल्य लगभग 90 रुपये लगता था। इसमे लगाने के लिये चीन देश से स्फटिक पत्थर मंगवाया गया था। इस पत्थर का मूल्य बहुत अधिक देना पडता था। एक गज लम्बे और एक गज चौडे चौकोर स्फटिक पत्थर के लिये लगभग पाँच सौ से भी अधिक रुपये देने पडते थे। इसके अतिरिक्त तिब्बत से 'नीलम', सिहल द्वीप से 'सिपारलाजूली' नामक मणि, बगदाद से पथराग' नाम की मणि एवं पंजाब से 'हीरा' इसमे जडने के लिये मंगवाया गया था। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही प्रकार के बहुमूल्य पत्थर तथा तरह-तरह की मणियाँ भिन्न-भिन्न देशों से इसमें लगाने के लिए मंगवाई गई थी।

ताजमहल के बनाने में जिस धनराशि का व्यय शहशाह शाहजहाँ ने किया होगा, इसका अन्दाज हम उपर्युक्त विवरणों से लगा सकते है। सामानो के मूल्य को तो आप छोड ही दीजिये, एक अंग्रेज महाशय ने लिखा है कि केवल प्रमुख-प्रमुख कारीगरो को ही उनकी मजदूरी के रुप में लगभग एक करोड रुपये दिये गये थे। छोटे मोटे कारीगरों एवं दैनिक कार्य करने वाले मजदूरों की गिनती इसमे नही है। उनको मजदूरी मे कितने रुपये दिये गये होगे, इसका सही-सही अनुमान लगाना कठिन है। ताजमहल के बनवाने मे जो संपूर्ण लागत खर्च हुई थी, उसी के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। कोई यह बताता है कि ताजमहल के बनाने में 18465186 रुपये खर्च हुए है और कोई उसकी लागत 31748826 रुपये बताता है। पर उपरोक्त ये दोनो आकड़े सत्य नही जान पड़ते। कर्नल एण्डरसन साहब ने ताजमहल की लागत का अन्दाजा लगाते हुए लिखा है कि इस पर 41148826 रुपये खर्च हुये थे। एक अन्य इतिहासकार का कहना है कि ताजमहल पर 6 करोड 60 लाख रुपये खर्च हुए थे। ऑकडों के सम्बन्ध में विद्वानो मे मतभेद हैं। मुस्लिम काल के इतिहास मे इस बात का कही कोई वर्णन नही मिलता है कि ताजमहल पर वास्तव में शाहजहाँ ने कितना खर्च किया था। इसीलिये ताज महल पर असली-लागत क्या आई थी इसका ठीक-ठीक पता नहीं चल सकता

आइये, हम एक बार फिर इस ताज के निर्माण के विगत पृष्ठों के उलट कर देखें। जो स्त्री भारत सम्राट की अर्धांगिनी बनी, जिसका समाधि मंदिर विश्व मे आश्चर्य की वस्तु बनकर खड़ा है, उस रात जब वह उसके प्रथम पति के घर से निकाली गई थी, उसे कितने कष्ट सहन करने पड़े होंगे पर विधि की यही रचना थी, संसार के सम्मुख अनोखा आदर्श प्रस्तुत करना था, तभी तो दोनों प्रेमियों के मिलन की भूमिका उस रात मे तैयार हुई थी। यदि जमाल खॉ को अपनी पत्नी पर सन्देह न हुआ होता तो सभव था आर्जूमन्द बेगम शाहजहॉ को न मिल पाती और ससार को ताजमहल का सौन्दर्य देखने को न मिलता।

कालांतर में जहॉगीर की मृत्यु हुई। शाहजहां ही उसका सबसे बड़ा पुत्र था इसलिये गद्दी पर बैठने का हकदार वही था। गद्दी पर बैठने के बाद ही उसने अपनीप्यारी बेगम को मुमताज की उपाधि दी। शाहजहां के महल में आर्जूमन्द का रूप पहले से कई गुणा खिल उठा।

मुमताज महल से शाहजहां के चार लडके और तीन लड़कियॉ पैदा हुई। लोगों का कहना है कि मुमताज को अपने मृत्यु की जानकारी पहले ही हो गई थी। मृत्यु के आगमन के पूर्व ही उसे इसका आभास हो गया था। इसकी कल्पना करके कभी-कभी वह अत्यधिक विह्वल हो उठती थी। उसे अपने प्राणों से अधिक प्रिय पति को त्याग कर सदा के लिए चला जाना पडेगा, इसका विचार आते ही उसका हृदय आर्त्तनाद कर उठता था। अपनी इसी व्यग्रता में तो एक दिन उसने शाहजहॉ से पूछा, "क्या मेरे मरने पर आप मेरी याद करेंगे? संभव है मेरे मरते ही आप किसी दूसरी स्त्री के साथ शादी कर ले? क्यों, है न सही?" शाहजहॉ के लिये मुमताज का वह प्रश्न अस्वाभाविक तथा अनापेक्षित था। उसने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उसके प्राणो से भी अधिक प्रिय वस्तु मुमताज उसे छोडकर संसार से चली जायेगी। और मुमताज का ऐसा सोचना कि वह दूसरी शादी कर लेगा, उसके पवित्र एवं दृढ प्रेम के प्रति अविश्वास प्रकट करना था। उसने साहस के साथ उत्तर दिया, "यदि परमात्मा का मुझ पर इतना गहरा प्रकोप हुआ कि वह तुम्हें मुझसे छीन ले, तो भी क्या? आज भी शाहजहॉ तुम्हारा है, और तुम्हारे मरने के बाद भी तुम्हारा ही रहेगा। जिस हृदय पर तुम्हारे प्यार की गहरी छाप है वहॉ और किसी का प्रभाव कैसे पड सकता है? तुम्हारे मरने के बाद भी मेरे अन्त करण की सभी वस्तुएं तुम्हारी याद में झंकृत होती रहेगी ऐसी मे किसी दूसरे की स्वर लहरियो को अलापने की उन्हे

फुर्सत ही कहाँ मिलेगी? तुम्हारा ऐसा सोचना सही नहीं है। जयपुर और राजपूताने से इसमे लगाने के लिए संगमरमर पत्थर मंगवाया गया था। कहते है एक गज लम्बे और एक गज चौडे चौकोर संगमरमर का मूल्य उस समय 4 रुपये लगता था। पीले रंग का जो पत्थर इसमें लगा हुआ है उसे नर्मदा नदी के तट से लाया गया था। इसकी लागत भी उतनी ही थी जितनी संगमरमर की थी। काला पत्थर संगमूसा चार-पहाडी नामक स्थान से मंगाया गया था। कहते है कि एक गज चौडे और एक गज लम्बे चौकोर पत्थर का मूल्य लगभग 90 रुपये लगता था। इसमे लगाने के लिये चीन देश से स्फटिक पत्थर मंगवाया गया था। इस पत्थर का मूल्य बहुत अधिक देना पडता था एक गज लम्बे और एक गज चौडे चौकोर स्फटिक पत्थर के लिये लगभग पाँच सौ से भी अधिक रुपये देने पडते थे। इसके अतिरिक्त तिब्बत से 'नीलम', सिंहल द्वीप से 'सिपारलाजूली' नामक मणि, बगदाद से 'पथराग' नाम की मणि एवं पंजाब से 'हीरा' इसमें जडने के लिये मंगवाया गया था। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही प्रकार के बहुमूल्य पत्थर तथा तरह-तरह की मणियाँ भिन्न-भिन्न देशो से इसमें लगाने के लिए मंगवाई गई थी।

ताजमहल के बनाने मे जिस धनराशि का व्यय शहशाह शाहजहाँ ने किया होगा, इसका अन्दाज हम उपर्युक्त विवरणो से लगा सकते हैं। सामानो के मूल्य को तो आप छोड ही दीजिये, एक अंग्रेज महाशय ने लिखा है कि केवल प्रमुख-प्रमुख कारीगरो को ही उनकी मजदूरी के रूप मे लगभग एक करोड रुपये दिये गये थे। छोटे मोटे कारीगरों एवं दैनिक कार्य करने वाले मजदूरो की गिनती इसमे नही है। उनको मजदूरी मे कितने रुपये दिये गये होगे, इसका सही-सही अनुमान लगाना कठिन है। ताजमहल के बनवाने मे जो संपूर्ण लागत खर्च हुई थी, उसी के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। कोई यह बताता है कि ताजमहल के बनाने में 18465186 रुपये खर्च हुए है और कोई उसकी लागत 31748826 रुपये बताता है। पर उपरोक्त ये दोनों आकड़े सत्य नही जान पडते। कर्नल एण्डरसन साहब ने ताजमहल की लागत का अन्दाजा लगाते हुए लिखा है कि इस पर 41148826 रुपये खर्च हुये थे। एक अन्य इतिहासकार का कहना है कि ताजमहल पर 6 करोड 60 लाख रुपये खर्च हुए थे। आँकडों के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद हैं। मुस्लिम काल के इतिहास मे इस बात का कहीं कोई वर्णन नही मिलता है कि ताजमहल पर वास्तव में शाहजहाँ ने कितना खर्च किया था। इसीलिये ताज महल पर असली-लागत क्या आई थी इसका ठीक-ठीक पता नही चल सकता

है। प्रमाणों के अभाव मे विद्वानों द्वारा निर्धारित काल्पनिक राशि पर ही हमे सतोष कर लेना पडता है।

भले ही विद्वान इस बात पर मतभेद प्रकट करे कि ताज के बनाने में कितना खर्च हुआ, पर उसे अखिल विश्व की अद्वितीय शोभापूर्ण इमारत होने मे किसी का कोई मतभेद नही हुआ और ताज यदि संसार मे प्रसिद्ध है तो इसलिये नहीं कि उस पर करोडों रुपये खर्च किये गये, बल्कि इसलिये कि उसका सौन्दर्य, उसकी शोभा और विशुद्ध प्रेम का दीप जो उसमें निरन्तर जलता रहता है, ससार में अपना सानी नहीं रखता। आगरे का यह 'ताज' वास्तव में संसार का ताज है।

सन् 1630 ई मे ताजमहल का बनना शुरू हुआ था। लोगों का कहना है कि इसके वनने मे लगभग बीस वर्ष लगे थे। कोई-कोई विद्वान बताते है कि ताजमहल के पूरा होने में सत्रह वर्ष लगे थे। अधिकतर लोग बीस वर्ष के लगभग का समय ही मानते हैं। इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता कि प्रतिदिन इसमे कितने मजदूर काम किया करते थे। फिर भी मजदूरों की सख्या हजारों से कम नही रही होगी।

ताजमहल के द्वार (फाटक) चॉदी के बने हुए थे। इसकी भीतरी दीवारों पर हीरे, मोती, और मणियों से काम किये गये थे। पर दुर्भाग्य से वे बहुमूल्य हीरे, जवाहरात एव मोती अब नहीं रहे। कहा जाता है कि सन् 1764 ई मे जाटो ने आक्रमण करके ताजमहल के हीरे, मोतियो को निकाल लिया और चांदी के फाटक भी उखाड़ कर ले गये। मुमताज महल की एक अत्यन्त मूल्यवान चादर बनवाई गई थी। परअब वह चादर भी नही रही है। सन् 1720 में इस चादर को अमीर हुसैन अली अपने साथ लेकर चला गया था।

ताजमहल बाहर से भी उतना ही सुन्दर और शोभायमान दिखाई पडता है, जितना वह भीतर से है। इसके चारो तरफ पर कोटा खिंचा हुआ है। परकोटे के भीतर एक अत्यन्त ही मनोहर उपवन है और इसी उपवन के मध्य ताजमहल की सुन्दर इमारत खड़ी है। ताजमहल के बाहर के हिस्से भी वडे मनोरम हैं। बाहर का दृश्य देखने में बडा ही मनोहर मालूम पडता है। परकोट के भीतर का क्षेत्रफल 1240 × 670 हाथ के लगभग है। चारों तरफ चारदीवारी से घिरा हुआ है और प्रवेश के लिये चार मार्ग हैं। सबसे बडे द्वार का फाटक 94 हाथ लम्बा और 74 हाथ चौड़ा है। इसी फाटक से होकर भीतरी दृश्य और उपवन के लिए रास्ता गया है। उपवन में वृक्षों की आकर्षक सुन्दर पंक्तियॉ खडी है जो देखने में बडी ही सुन्दर मालूम पडती है। उपवन मे सफेद सं   का बना हुआ एक बड़ा ही सुन्दर हौज है

इसी हौज के सामने ताजमहल है। मुमताज की समाधि मन्दिर एक सुन्दर चौकोर चबूतरे पर बना हुआ है। उसके ऊपर लम्बी-लम्बी सुराहियाँ है। चबूतरा हर तरफ से 208 हाथ लम्बा और 12 हाथ ऊँचा है। चबूतरे के चारों कोनों पर चार ऊँची-ऊँची मीनारें बनी हुई हैं। प्रत्येक मीनार की ऊचाई पिचहत्तर हाथ की है इन मीनारो की बनावट इतनी मनमोहक तथा सुन्दर हैं कि इन्हें देखते ही बनता है। इन्ही मीनारों के बीच में मुमताज महल की समाधि (कब्र) बनी हुई है। समाधि के बीचों बीच एक गुम्बज बना हुआ है, जिसकी मोटाई 120 हाथ तथा ऊँचाई 40 हाथ की है। गुम्बज के चारों तरफ भी चार अन्य छोटी-छोटी मीनारें बनो हुई है। इनमे से प्रत्येक मीनारें की ऊँचाई 21 हाथ की बताई जाती है।

यह तो हुई ताजमहल की बाहरी बनावट की बात। भीतर का हिस्सा तो बाहर के हिस्से से भी कई गुना अधिक सुन्दर है! भीतरी दीवारों पर चारों तरफ रंग-बिरंगे बेल-बूंटे, फल-फूल आदि बनाये गये हैं। इनकी बनावट बहुमूल्य रंग-बिरंगे पत्थरों से की गई है। इनका सौन्दर्य अवर्णनीय है। बिना एक बार अपनी ऑखों से देखे उसका वास्तविक आनन्द नहीं मिल सकता। सिर्फ यही कहा जा सकता है कि इसकी टक्कर में दुनिया के किसी भी कोने मे दूसरी कोई इमारत नहीं है। ताज महल की भीतरी दीवार पर फारसी मे लिखा है–

"आर्जूमन्द बानू, जिसे मुमताज म्हल की उपाधि मिली थी, प्यारे शौहर सम्राट शाहजहाॅ के साथ हमेशा–हमेशा के लिये इस समाधि मन्दिर में विश्राम कर रही है! बेगम की मृत्यु 1840 हिजरी में हुई।"

आज ताज महल की भीतरी शोभा को लुटेरों ने तहस-नहस कर दिया है। बराबर वे अपनी धन लोलुपता की आग बुझाने के लिये इस पवित्र मंदिर में प्रवेश करते रहे हैं और इसकी आभा श्रीहीन करने की चेष्टा करते रहे हैं। काश! उन्हे मालूम होता कि चाहे ताज के सारे कीमती पत्थर और हीरे जवाहरात वे लूटकर ले जायें वे ताजमहल की ख्याति मे कोई बाधा नही डाल सकते। प्रेम का यह बेमिसाल चिह्न ताज महल युग-युगो तक विश्व के लिये आकर्षण का केन्द्र बना ही रहेगा।

कहते हैं कि ताजमहल के तैयार हो जाने के पश्चात् सम्राट शाहजहाॅ अपनी कब्र के लिये भी ताजमहल की तरह ही, उसके सामने ही यमुना नदी के दूसरी पार ही एक दूसरी इमारत बनवाना चाहता था। पर संभवतः परमात्मा को यह स्वीकार नहीं था बुढापे में उसी के पुत्र उसके शत्रु बन गये थे और

उसकी यह इच्छा अधूरी ही रह गई थी। शाहजहॉ की यह इच्छा थी कि यमुना नदी पर एक पुलबनाकर ताजमहल और अपने लिये बने मकबरे को मिला दे। यदि उसके पुत्रों ने उसे धोखा न दिया होता और वह अपनी इच्छा पूरी कर सकता तो संभवत संसार का सारा सौन्दर्य आगरा मे यमुना नदी केतट पर सदा-सदा के लिये स्थायी रूप से एकत्रित हो जाता। कहते है कि उसने पुल को सगमरमर के पत्थर से बनवाने की योजना बनाई गई थी, पर समय ने उसका साथ नहीं दिया और अरमान को दिल मे दवाये ही उसने अपने पुत्र औरगजेब की कैद मे आखिरी बार संसार को देखा। अन्त में उसके पुत्रो ने उसे भी ताजमहल मे मुमताज महल की समाधि की बगल मे ही दफना दिया और दोनो प्रेमी मरने के पश्चात् भी एक ही साथ रहे।

ताजमहल के बन जाने के बाद उसकी देखभाल के लिये शाहजहा ने कई स्थाई आदमी मुकर्रर कर दिये थे। उनकी तनख्वाहे नियत थीं। उसकी समय-समय पर मरम्मत के लिये भी उचित प्रबन्ध कर दिया गया था। कहते हैं कि इस काम के लिये उसने तीस गांवो को अलग निकाल दिया था। उन तीस गांवो की सालाना आमदनी चार लाख रुपयों की होती थी। पर धीरे-धीरे मुसलमानो की अमलदारी में ये तीस गाव भी चले गये। बीच-बीच मे ताज महल की मरम्मत का भी कोई प्रबन्ध नहीं हुआ। परिणामत जहां-तहां से इस जगत प्रसिद्ध इमारत में खराबियां आने लगी। पर अग्रेजी शासनकाल में भारत के गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने इस प्रसिद्ध इमारत की मरम्मत केलिये कई हजार रुपयों का अनुदान स्वीकृत किया। यह ताज महल का पहला जीर्णोद्धार था।

ताज महल की इमारत में आज जंग भले ही लग जाय, पर उसकी पृष्ठभूमि मे दो हृदयो के मिलन का जो अमूल्य संदेश है, वह बराबर संसार के कानो मे गूंजता रहेगा। एक बार प्रसिद्ध अग्रेज के साथ ताजमहल देखने गये थे। वापस आते समय स्लीमन साहब ने अपनी पत्नी से पूछा—"बताओं तो ताजमहल मे तुमने क्या देखा? कैसा लगा तुम्हें ताजमहल?" और एक मुस्कराहट के साथ उस अंग्रेज रमणी ने कहा—"जो कुछ मैंने देखा उसे सचमुच मै व्यक्त नहीं कर सकती। पर एक बात मै कह सकती हूँ कि अगर कोई आदमी मेरी कब्र पर भी ताजमहल की तरह दूसरी इमारत बनवाने को तैयार हो, तो मै अभी मर जाना पसन्द करूँगी।"

विशुद्ध प्यार की वह प्रेरणा ही थी जो स्लीमन साहब की पत्नी के मुख से मुखरित हो उठी थी कि ताज का बाह्य सौन्दर्य अनूठा है। एक अन्य

अंग्रेज लेखक ताज की शोभा और उसके निर्माण से निहित उद्देश्य की कल्पना से इतना प्रभावित होता है कि अनायास ही उसके मुख से निकल पडता है—

"ताज के सौन्दर्य का वास्तविक आनन्द हमें तभी मिलता है जब हम संध्या के आगमन की प्रतीक्षा में उपवन के पुष्पों को हास्य मुद्रा में प्रकम्पित होते देखते हैं, जमुना का स्निग्ध शीतल जल संध्या के धूमिल प्रकाश में और भी श्यामल हो जाता है। तब हम देखेंगे कि पेड़ों की ओट से एक पत्ती बाहर निकल पडती है और मानो पत्ते उसके आगमन का स्वागतगान करते हों, इस प्रकार वे आपस मे खर-खर का शब्द करने लगते हैं। पत्तियों का सौन्दर्य कलरव, चमगादडों का क्रीडा मग्न होकर इधर-उधर उडना, ऐसा जान पडता है मानों ये सभी चन्द्रमा की शीतल चाँदनी के आगमन का सन्देश प्रकृति के अन्य प्राणियों को दे रहे हों। ऐसे मनोरम एवं हृदय उत्प्रेरित वातावरण में हम अनायास ही 'ताज' के उस महल को भूल जाते हैं, उस समय हम 'ताज' को देखें अथवा न देखें, इसका हमारे लिये कोई महत्व नहीं। . किन्तु ज्यों-ज्यों रात बीतती जाती है, हमें ज्ञात होता है कि अपने समस्त अलंकृत शृंगारों से सजधज कर हाड़-मांस की वह मूर्ति जो कब्र में अपने विश्वासी स्वामी की बगल मे सोई हुई है, बराबर अपने पति के प्रति जागरूक रही, और रहेगी। ताज चाहे जितना भी आश्चर्यजनक हो, कितना भी मूल्यवान हो, कितनी भी प्रसिद्ध प्राप्त कर चुका हो, पर ताज स्वयं केवल एक निशानी है, यादगार है। जब तक संसार मे स्त्री-पुरुष प्रेम करते रहेंगे, तब तक वे जमुना के तट पर निर्मित ताजमहल में अपनी श्रद्धा और भक्ति के पुष्प चढाने केलिये आते रहेंगे—और श्रद्धा के वे पुष्प न तो ईसा आफन्दी को चढेंगे, न शाहजहाँ को चढेंगे और न अन्य किसी को चढेंगे, बल्कि वे पुष्प मुमताज के कदमों पर न्यौछावर किये जायेंगे क्योंकि उसने प्यार किया था और बदले में प्यार का प्रतिदान मिला था उसे।"

एक लेखक की कल्पना का 'ताज' हमने देखा; कितना मर्म, कितना उद्‌गार और कितने प्रशंसा के भाव निहित हैं उसमें ! सचमुच ही ताजमहल भारत के उस मुगल सम्राट की अमर कीर्ति है और उसके दिल की अनोखी शोभा है।

□□□

ओलम्पिया में जुपीटर की मूर्ति

जिस प्रकार एशिया महाद्वीप मे भारत अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृत के लिये ससार में अग्रणी माना जाता है, उसी प्रकार यूरोपीय महाद्वीप में ग्रीस एवं रोम सभ्यता और संस्कृति के आदि गुरु समझे जाते हैं। ग्रीस देश की सभ्यता वहुत ही प्राचीन है। इस देश ने भौतिक संसार को बहुत कुछ सीख दी है। एक जमाना था कि जव इस देश की (ताका सस्कृति और सभ्यता के क्षेत्र मे काफी ऊँची लहरा रही थी। पर आज वह बात नहीं है।

इतिहास लेखकों का मत है कि पौराणिक काल में ग्रीस के निवासियो मे धर्म के प्रति बडी ही प्रबल चेतना थी। लोगो के प्रत्येक कार्य का सचालन धर्म द्वारा निर्धारित सूत्रो पर ही होता था। प्राचीन काल में इस देश के लोग देवी-देवताओं को बहुत अधिक मानते थे और उनकी पूजा-अर्चना किया करते थे। प्राचीन इतिहास लेखक हेरोडोट्स ने अपने इतिहास मे ग्रीस के विषय में लिखते हुए कहा है कि इस देश के लोग बडे ही धर्म भीरु थे और अपने हर काम में देवी-देवताओ को प्रमुखता देते थे।

जिस प्रकार अपने देश भारत के निवासी ईश्वर के विभिन्न रूप को तरह-तरह की मूर्तियों में देखते हैं और उनकी पूजा करते है, उसी प्रकार ग्रीस देश के निवासी भी भिन्न-भिन्न देवी-देवताओ को मानते थे। वे भी ईश्वर के तरह-तरह के रूपों की कल्पना का आधार मूर्तियों को मानकर उसकी पूजा किया करते थे। ग्रीस के इन देवताओं मे जुपीटर नामक देवता सबसे बड़े माने जाते हैं। जुपीटर को यहॉ के निवासी सभी देवताओं मे महान समझते है और इनके प्रति लोगो मे श्रद्धा और भक्ति भावना बहुत अधिक हैं। जिस प्रकार भारत के हिन्दू भगवान इन्द्र को देवताओ का राजा मानते हैं। वही स्थान ग्रीस के देवी-देवताओं मे जुपीटर का है। ग्रीस देश के निवासियों की

यह धारणा है कि जुपीटर ही सभी देवी-देवताओं के राजा है। जिस प्रकार देवराज इन्द्र की पत्नी (इन्द्राणी) का नाम धात्री है, वैसे ही जुपीटर देव की पत्नी का नाम जूनो है।

ग्रीस देश वाले अनन्त काल से जुपीटर और जूनो की मूर्तियों की पूजा बडी श्रद्धा और भक्ति से करते आ रहे हैं। उनके जीवन की हर सास में देवराज जुपीटर और देवरानी जूनो का निवास है। सिर्फ यही नही इतिहास के प्रारम्भिक काल में ग्रीस कला, साहित्य एवं सभ्यता के भिन्न-भिन्न अगों मे पूर्णता प्राप्त कर चुका था। ग्रीस के महान साहित्यकार 'होमर' का नाम हमने सुना ही है जिसने 'इलियड' एव 'ओडिसी' नामक महाकाव्यों की रचना की थी। होमर का समय ईसा से ग्यारह सौ वर्ष पूर्व का बताया जाता है। 'इलियड' की कथा हमारे रामायण की कथा की तरह ही है। जिस सिकन्दर महान् की अनेकानेक वीर गाथाये हम लोगो ने पढी है, वह भी इसी देश का निवासी था। कहते हैं कि कारीगरी के कुछ ऐसे विशेष ढंग जो आज पश्चिम के देशो में प्रचलित है सर्वप्रथम ग्रीस देश ने ही उन्हें बताये थे। हेरोडोट्स के इतिहास मे भी इस बात का प्रमाण मिलता है कि जिन दिनो ग्रीस मे अच्छी से अच्छी सुन्दर मूर्तियां आदि बना करती थीं, उन दिनो ससार के दूसरे देशों को सभावत इस कला की जानकारी भी नहीं थी।

ग्रीस देश की जिस मूर्ति 'जुपीटर देव की मूर्ति' का उल्लेख हम इन पृष्ठों मे कर रहे है, वह वहां के अत्यन्त ही श्रद्धेय देवता की मूर्ति है। जुपीटर की वह मूर्ति जिसकी पूजा ग्रीस वाले सदियो से करते आ रहे हैं वह वास्तव मे आश्चर्य जनक है। इस मूर्ति का सौन्दर्य, इसकी विशालता और कारीगरी विश्व भर मे प्रसिद्ध है। संसार के अन्यत्र किसी भी हिस्से मे इतनी सुन्दर एव अद्भुत मूर्ति अन्य किसी भी स्थान पर नही है। सर्वप्रथम जब संसार के प्रसिद्ध देशो के अन्वेषकों ने इस मूर्ति को देखा था, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा था। आदमी अपने हाथों से सृजन का ऐसा चित्र ससार के सामने प्रस्तुत कर सकता है, इसकी कल्पना भी वे नही कर सकते थे।

जुपीटर की जिस मूर्ति के सम्बन्ध में हम बताने जा रहे हैं वह ग्रीस के सुन्दर नगर ओलम्पिया मे बनी हुई है। कुछ लोग इस मूर्ति को इसीलिये ओलम्पियाई जुपीटर के नाम से भी पुकारते है। इस मूर्ति के निर्माण मे कलाकार ने जिस कौशल एवं चातुर्य का परिचय दिया है वह वास्तव मे आश्चर्य में डालने वाला है। इसी कारीगरी और कला कुशलता के कारण यह मूर्ति संसार मे इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी है यूरोप में ही नहीं बल्कि संसार

ओलम्पिया में जुपीटर की मूर्ति

जिस प्रकार एशिया महाद्वीप में भारत अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृत के लिये ससार मे अग्रणी माना जाता है, उसी प्रकार यूरोपीय महाद्वीप में ग्रीस एवं रोम सभ्यता और संस्कृति के आदि गुरु समझे जाते है। ग्रीस देश की सभ्यता बहुत ही प्राचीन है। इस देश ने भौतिक संसार को बहुत कुछ सीख दी है। एक जमाना था कि जब इस देश की (ताका संस्कृति और सभ्यता के क्षेत्र में काफी ऊँची लहरा रही थी। पर आज वह बात नही है।

इतिहास लेखकों का मत है कि पौराणिक काल में ग्रीस के निवासियो में धर्म के प्रति बडी ही प्रबल चेतना थी। लोगो के प्रत्येक कार्य का संचालन धर्म द्वारा निर्धारित सूत्रो पर ही होता था। प्राचीन काल में इस देश के लोग देवी-देवताओ को बहुत अधिक मानते थे और उनकी पूजा-अर्चना किया करते थे। प्राचीन इतिहास लेखक हेरोडोट्स ने अपने इतिहास में ग्रीस के विषय में लिखते हुए कहा है कि इस देश के लोग बडे ही धर्म भीरु थे और अपने हर काम में देवी-देवताओ को प्रमुखता देते थे।

जिस प्रकार अपने देश भारत के निवासी ईश्वर के विभिन्न रूप को तरह-तरह की मूर्तियों मे देखते है और उनकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार ग्रीस देश के निवासी भी भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं को मानते थे। वे भी ईश्वर के तरह-तरह के रूपों की कल्पना का आधार मूर्तियो को मानकर उसकी पूजा किया करते थे। ग्रीस के इन देवताओं में जुपीटर नामक देवता सबसे बड़े माने जाते हैं। जुपीटर को यहाँ के निवासी सभी देवताओं में महान समझते हैं और इनके प्रति लोगो मे श्रद्धा और भक्ति भावना बहुत अधिक है। जिस प्रकार भारत के हिन्दू भगवान इन्द्र को देवताओं का राजा मानते हैं। वही स्थान ग्रीस के देवी-देवताओं मे जुपीटर का है। ग्रीस देश के निवासियों की

यह धारणा है कि जुपीटर ही सभी देवी-देवताओं के राजा है। जिस प्रकार देवराज इन्द्र की पत्नी (इन्द्राणी) का नाम धात्री है, वैसे ही जुपीटर देव की पत्नी का नाम जूनो है।

ग्रीस देश वाले अनन्त काल से जुपीटर और जूनों की मूर्तियों की पूजा वडी श्रद्धा और भक्ति से करते आ रहे है। उनके जीवन की हर सास मे देवराज जुपीटर और देवरानी जूनो का निवास है। सिर्फ यही नही इतिहास के प्रारम्भिक काल मे ग्रीस कला, साहित्य एवं सभ्यता के भिन्न-भिन्न अंगों मे पूर्णता प्राप्त कर चुका था। ग्रीस के महान साहित्यकार 'होमर' का नाम हमने सुना ही है जिसने 'इलियड' एवं 'ओडिसी' नामक महाकाव्यों की रचना की थी। होमर का समय ईसा से ग्यारह सौ वर्ष पूर्व का वताया जाता है। 'इलियड' की कथा हमारे रामायण की कथा की तरह ही है। जिस सिकन्दर महान् की अनेकानेक वीर गाथाये हम लोगो ने पढ़ी है, वह भी इसी देश का निवासी था। कहते हैं कि कारीगरी के कुछ ऐसे विशेष ढंग जो आज पश्चिम के देशों में प्रचलित हैं सर्वप्रथम ग्रीस देश ने ही उन्हें वताये थे। हेरोडोट्स के इतिहास मे भी इस वात का प्रमाण मिलता है कि जिन दिनों ग्रीस में अच्छी से अच्छी सुन्दर मूर्तियां आदि बना करती थीं, उन दिनों संसार के दूसरे देशो को सभावत इस कला की जानकारी भी नहीं थी।

ग्रीस देश की जिस मूर्ति 'जुपीटर देव की मूर्ति' का उल्लेख हम इन पृष्ठों में कर रहे हैं, वह वहां के अत्यन्त ही श्रद्धेय देवता की मूर्ति है। जुपीटर की वह मूर्ति जिसकी पूजा ग्रीस वाले सदियो से करते आ रहे हैं वह वास्तव मे आश्चर्य जनक है। इस मूर्ति का सौन्दर्य, इसकी विशालता और कारीगरी विश्व भर में प्रसिद्ध है। ससार के अन्यत्र किसी भी हिस्से में इतनी सुन्दर एवं अद्भुत मूर्ति अन्य किसी भी स्थान पर नही है। सर्वप्रथम जव ससार के प्रसिद्ध देशों के अन्वेषकों ने इस मूर्ति को देखा था, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा था। आदमी अपने हाथों से सृजन का ऐसा चित्र संसार के सामने प्रस्तुत कर सकता है, इसकी कल्पना भी वे नहीं कर सकते थे।

जुपीटर की जिस मूर्ति के सम्वन्ध मे हम बताने जा रहे हैं वह ग्रीस के सुन्दर नगर ओलम्पिया में वनी हुई है। कुछ लोग इस मूर्ति को इसीलिये ओलम्पियाई जुपीटर के नाम से भी पुकारते हैं। इस मूर्ति के निर्माण मे कलाकार ने जिस कौशल एव चातुर्य का परिचय दिया है वह वास्तव मे आश्चर्य मे डालने वाला है। इसी कारीगरी और कला कुशलता के कारण यह मूर्ति ससार मे इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी है। यूरोप मे ही नहीं बल्कि संसार

के सभी देशो के लिये जुपीटर की यह मूर्ति आश्चर्य एव कौतूहल की वस्तु बनी हुई है।

संसार प्रसिद्ध इस मूर्ति का निर्माता ग्रीस देश का निवासी एक कुशल कलाकार था। उस कलाकार का नाम था फिडियस। इसी कलाकार फिडियस ने पश्चिम क देशों को कला-कुशलता की जानकारी दी। उससे पहले यूरोप महाद्वीप के विभिन्न देशों के निवासी काठ का उल्लू बनाना भी नहीं जानते थे कहते हैं, फिडियस बडा ही चतुर एवं योग्य कलाकार था। इसका जन्म ईसा से पॉच सौ वर्ष पूर्व एथेन्स नगर में हुआ था। कलाकार फिडियस के जन्मकाल के सम्वन्ध में कई विद्वानों में मतभेद है। जिन दिनों फिडियस का जन्म हुआ, उन्हीं दिनों सम्राट पेरिक्लियस का जन्म भी एथेन्स नगर में हुआ था।

ग्रीस का सम्राट पेरिक्लियस बडा ही कला प्रेमी था। उसके समय में फिडियस की कला-कृतियो की धूम भी चारों ओर थी। एक बार सम्राट परिक्लियस ने कलाकार फिडियस को अपने दरबार में बुलाया और उससे कहा कि "फिडियस तुम अपनी कला से मेरे महलों और राजधानी को स्वर्ग के समान सुन्दर बना दो। इसके लिये जितना भी धन लगे, मैं सहर्ष व्यय करने को तैयार हूँ।" फिर क्या था, फिडियस को अपनी कला दिखलाने का इससे सुन्दर मौका और क्या मिल सकता था।

महान् कलाकार फिडियस अपने काम में लग गया। उसने सम्राट की राजधानी और महल के लिये एक से एक सुन्दर वस्तुएँ बनाई। उसकी बनाई हुई प्रत्येक कृति अद्भुत होती गई। जो उसकी कलाकृतियों को देखता मन्त्र मुग्ध सा खड़ा देखता ही रह जाता। उसने राजधानी को अलकापुरी और महल को इन्द्र के महल की तरह सजाना शुरू कर दिया। इसी दौरान उसने अनेक देवी देवताओं की अनोखी आकर्षक मूर्तियां भी बनाई। उन दिनों कलाकारों में प्रतिस्पर्धा होती थी। फिडियस की कला कृति को देखकर सम्राट वहुत प्रसन्न थे। दूसरे कई और अन्य कलाकारों ने भी सम्राट को प्रसन्न करने के लिये फिडियस द्वारा बनाई गई मूर्तियो की तरह ही और कई मूर्तियां वनाई पर फिडियस की मूर्ति की कलाकारी की बराबरी कोई भी न पा सका। जान पडता था की कला की देवी साक्षात् फिडियस की कलाकृतियो में निवास करती है।

इन मूर्तियों में से फिडियस ने हाथी दांत और सोने एवं कीमती जवाहरातो से भी अनेक मूर्तियाँ वनाई थी। हाथी दांत और सोने की मूर्तियां

बनाने की कला का प्रचार, कहते है फिडियस के बाद ही हुआ सर्वप्रथम उसी ने हाथी दांत और सोने से मूर्तियो बनाई थीं। सारे ग्रीस में फिडियस द्वारा बनाई गई इन मूर्तियों की बडी चर्चा रहती थी। दूर-दूर से लोग इन्हें देखने के लिये आते थे। एथेन्स नगर में ऐसी सैकडो मूर्तिया थी। लोग इन मूर्तियो की बडी श्रद्धा के साथ पूजा करते थे। इनमें जो कारीगरी की गई थी, उसे देखकर लोगों को जैसे काठ मार जाता था। लोग श्रद्धा औरविस्मय के साथ एक टक इन्हे देखते ही रह जाते थे।

परन्तु जिस विशेष, मूर्ति की चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं उसे फिडियस ने ओलम्पिया नगर में बनाया था। ओलम्पिया उन दिनो ग्रीस का प्रसिद्ध नगर था और आज भी यह नगर खेलकूद की विश्व स्तरीय प्रतियोगिताओ के लिए काफी प्रसिद्ध है। हां तो जुपीटर की वह विश्व प्रसिद्ध मूर्ति इसी नगर में प्रतिष्ठित थी। वैसे तो फिर फिडियस ने हाथी दांत और सोने की अनेक बड़ी-बडी मूर्तियां बनाई, पर ओलम्पिया की जुपीटर की मूर्ति उन सभी मे अधिक सुन्दर एवं प्रशंसनीय सिद्ध हुई।

कहते हैं कि पुरानेकाल मे ओलम्पिया में प्रत्येक सत्तरवे वर्ष पर एक बहुत बड़ा मेला लगा करता था। कोई-कोई विद्वान इसे प्रत्येक उनहत्तरवें वर्ष पर बतलाते हैं। इस मेले का आयोजन एक बडे दालान में होता था।

इसी मेले के सम्बन्ध की एक घटना का उल्लेख करते हुय कहा गया है कि एक बार एथेन्स नगर के निवासियों पर इस मेले के संचालन का भार सौंपा गया था। उन्हीं दिनों ग्रीस का महान कलाकार फिडियस एथेन्स छोड कर भाग गया था। कहा जाता है कि मूर्तियाँ बनाते समय उस पर सोने की चोरी करने का अपराध लगाया गया था। अत: इस डर से कि इस चोरी के कथित अपराध मे उसे सम्राट की ओर से फॉसी की सजा न दे दी जाय, वह नगर छोड़कर भाग गया। वास्तव में बात ऐसी थी कि फिडियस ने सोना नहीं चुराया था। कुछ दूसरे कलाकारों ने जो फिडियस की ख्याति से जलते थे और उसके विरूद्ध साजिशो की रचना कर रहे थे, उसे फंसाने के लिये सोना चुराया था। बाद में एथेन्स के निवासियों को पता चला तो वे बडे दु:खी हुये और फिडियस के प्रति किये गये अन्याय के लिये प्रायश्चित करने लगे।

ओलम्पिया नगर के मेले के संचालन का भार जब एथेन्स के निवासियो को सौंपा गया, तो उन्होने वहा पर जुपीटर की मूर्ति प्रतिस्थापित करने की योजना बनाई। मूर्ति के निर्माण के लिये उन्होंने फिडियस से प्रार्थना की। फिडियस तैयार हुआ पर उसने एथेन्स के से अपने प्रति किये

गये अकृतज्ञता का बदला लेना चाहा। उसने सोचा कि ओलम्पिया मे मैं ऐसी अद्‌भुत मूर्ति बनाऊंगा जैसी एथेन्स मे एक भी नहीं होगी और यही सोचकर उसने विश्व प्रसिद्ध देवराज जुपीटर की मूर्ति का निर्माण किया। फिडियस की कामना पूरी हुई। ओलम्पिया की वह मूर्ति सचमुच मे एथेन्स ही नहीं, बल्कि सारे-ससार मे अपने ढंग की अनूठी अकेली मूर्ति है।

प्रत्यक्ष द्रष्टाओं का कहना है कि सोने 'और हाथी दाँत की बनी हुई यह मूर्ति इतनी ऊँची थी कि जिस मन्दिर में उसे प्रतिष्ठित किया गया था वह उसकी छत से टकराती थी। मूर्ति को एक मन्दिर में स्थित सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया था। लोगों का कहना है कि यदि उस मूर्ति को खडा किया जाता तो वह इतनी ऊँचाई हो जाती कि मन्दिर की छत तोड कर बाहर निकल जाती। जुपीटर की इस मूर्ति के नीचे दाहिनी ओर 'विजय देवी' की एक छोटी सी मूर्ति थी। उस मूर्ति के सिर पर मुकुट रखा हुआ था और हाथों में माला शोभायमान थी। जुपीटर की मूर्ति के बायें हाथ में एक दण्ड बना हुआ था। यह दण्ड कई प्रकार के धातुओं के सम्मिश्रण से बनाया गया था। जुपीटर को जो वस्त्र पहनाया गया था, वह स्वर्ण का वस्त्र था। जिस हाथ मे दण्ड था, उसी पर एक पन्ने की मूर्ति भी बनी हुई थी। मूर्ति के स्वर्ण-वस्त्र पर तरह-तरह की बेल-बूंटे एवं तरह-तरह के पत्तियो के चित्र बने हुए थे जो देखने में बडे ही मनोरम मालूम पडते थे।

जुपीटर की इस मूर्ति की ऊंचाई का सही-सही पता नहीं चलता है। प्राचीन अन्वेषकों ने भी इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। जिस मन्दिर में यह मूर्ति प्रतिष्ठित थी उसकी ऊँचाई 65 फीट की बतलाते हैं। इससे भी हम मूर्ति की ऊंचाई का एक अन्दाज आसानी से लगा सकते हैं। क्योंकि पहले ही यह बताया जा चुका है कि मन्दिर के उस कमरे में जिसमें मूर्ति रखी गई थी, मूर्ति का ऊपरी भाग सटता हुआ सा जान पडता था। अतः प्रतिष्ठित अवस्था मे मूर्ति की ऊँचाई प्रायः 60 फीट की हो सकती थी।

जिस सिहासन पर मूर्ति रखी गई थी वह सिंहासन आबनूस की लकडी, हाथी दांत और स्वर्ण का बना हुआ था। उसमें चारों तरफ बहुमल्य मोती और मणियाँ जडी हुई थीं। मूर्ति के सिर पर आलिव (एक प्रकार का पश्चिमीय वृक्ष) वृक्ष की शाखा की तरह का मुकुट रखा गया था। यह मूर्ति फिडियस की सर्वोत्तम एवं अद्वितीय रचना थी। इसके बन कर तैयार हो जाने के पश्चात् उसे स्वयं ही इतना आश्चर्य होने लगा था कि उसे अपने हाथों पर विश्वास ही नही हुआ था' उसे ताज्जुब था कि क्या उसी के हाथों ने इस मूर्ति की

रचना की है। उसने इस मूर्ति को बनाने में अपने भीतर के कलाकार को पूर्णत: जागृत कर लिया था। अपने समस्त चातुर्य को सजोकर उसने इस मूर्ति का निर्माण किया था। प्रशसा एवं आश्चर्य की बात तो यह थी कि यह मूर्ति देखने में जितनी विशाल लगती थी, उतनी धातु उसनें नहीं लगाई गई थी। मूर्ति की लम्बाई-चौडाई एव डील-डौल को इतने तोले हुये पैमाने पर कलाकार ने बैठाया था, कि कही से भी उसमें कोई कमी नहीं दिखलाई पडती थी।

ग्रीस के निवासियों मे, विशेषकर ओलम्पिया नगर के रहने वालों में इस मूर्ति से सम्बन्धित कितनी ही प्रकार की कहावतें एवं किंवदतियाँ प्रचलित हैं। लोगो मे इस धारणा का बाहुल्य है कि जब वह मूर्ति बनकर तैयार हो गई तो देवराज जुपीटर उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उनका आनन्द चरम सीमा पर पहुँच गया और वह इतने आनन्द विभोर हो उठे कि अपने समस्त आराधकों की उपस्थिति में ही अपने वज्रास्त्र का मन्दिर में पडी मेज पर जोरों से प्रहार किया। जिसके परिणाम स्वरूप उस मेज के टुकडे-टुकड़े हो गये थे। देवराज जुपीटर की प्रसन्नता की इस याद में मेज के टूटे अश वहीं मन्दिर में बडे चाव से रखे गये थे।

इस मूर्ति मे निहित कलात्मक चमत्कार को देखकर लोगों को आश्चर्य और कुतूहल दोनों ही होता था। इसमें जितने हाथी दांत का इस्तेमाल किया गया था, उसका अन्दाज लगाना कठिन है। लोगों का कहना है कि हजारों की संख्या में हाथियो की हत्या की गई थी और उनके दांत उखाडे गये थे। उन दांतों को तेज यन्त्र से फाड कर पतले-पतले बारीक तख्ते तैयार किये गये थे। उन्ही से विश्व के इस आश्चर्य जुपीटर की मूर्ति का निर्माण हुआ था। उतने पतले-पतले हाथी दातों से किस प्रकार इतनी सुन्दर एव विशाल मूर्ति बनी थी यह साधारण मस्तिष्क के लिए कल्पना से भी दूर की बात है।

हमने पहले यह उल्लेख किया है कि ग्रीस की राजधानी एथेन्स नगर में फिडियस और अन्य दूसरे कलाकारों ने कितनी ही मूर्तियाँ बनाई थीं। उन मूर्तियो के निर्माण मे जिस हिंसा का सहारा लिया गया था, उसकी कल्पना भी कम आश्चर्य जनक नही है। जहाँ एक तरफ उन मूर्तियों मे की गई कारीगरी के अद्भुत सौंदर्य की हम सराहना करते हैं जिन्हें देखते ही कोई भी प्रथम झलक में मानवी सृजन के पुष्प नहीं मान सकता, वहीं दूसरी तरफ इन निर्माण कार्यों में प्रस्तुत साधनों के लिये जो हिंसा की गई होगी वह भी रोगटे खड़े कर देने वाली लगती है

उन मूर्तियो के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुये एक अग्रेज विद्वान ने लिखा है--"उन मूर्तियों को बनाने में जितने हाथी दॉत लगे थे, उसके लिये हजारों क्या लाखों की सख्या में हाथियों की हत्या की गई होगी। इसके लिये न जाने कितने ही हाथी ग्रीस वालो को बाहर दूर-दूर के देशो से मगवाने पडे होगे और उनकी हत्या करके दॉत निकाले गये होंगे।"

ध्वस पर ही निर्माण की नीव रखी जाती है। आज भी मनुष्य अपने आनंद और सुख के लिये प्रतिदिन ही लाखो-लाखो पशुओ की हत्या करता है। यही नही, आदमी पर आदमी का शासन करने की लोलुपता का स्मरण ही कीजिये तो पता चलेगा कि अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये एक देश की हजारों-हजारो जनता का रक्तपात करना पडे, तो वह उसे पाप अथवा अधर्म मानने को तैयार नही। अतएव, ग्रीस के उसे गौरव चिह्न तथा अद्‌भुत कला-कृतियो की पृष्ठभूमि में हजार दो हजार हाथियो की हत्या का कलंक भी छिपा हो,तो वह कोई महत्त्व नही रखता।

जुपीटर की जिस मूर्ति का उल्लेख ऊपर किया गया है, वह तो कलाकार की अद्वितीय करीगरी है ही, अब हम उस मन्दिर की थोडी-सी जानकारी भी प्राप्त कर ले, जिसमें वह संसार प्रसिद्ध मूर्ति प्रतिष्ठित की गई थी। यह मन्दिर अत्यन्त ही सुन्दर है। इसकी दीवार में बडे ही आकर्षक ढग से तरह-तरह की चित्रकारी की गई है। अनेक देवी-देवताओ की आकृतियॉ मन्दिर की दीवारों पर बनाई गई थीं। इनमें ग्रीस के तत्कालीन सम्राट के भी चार चित्र बने हुए थे। सम्राट के ये चित्र संगमूसा और संगमरमर पत्थरो के मेलसे बनाये गये थे। दीवार पर जो आकृतियां बनाई गई थीं, उन्हे देखने से बडा आश्चर्य होता था। इतनी सफाई के साथ उनकी कांट-छांट की गई थी कि कहीं से कोई त्रुटि नजर नहीं आती थी। उन्हे देखते ही लोग दातो तले अंगुली दबाने लगते थे। कारीगरी का ऐसा अद्‌भुद्‌ चमत्कारिक रूप संसार मे अन्यतत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलता।

सारा का सारा मंदिर सफेद संगमरमर के पत्थर का बना हुआ था। मन्दिर के सामने वाले स्थान की लम्बाई-चौडाई 240 हाथ की बताई जाती है मन्दिर मे 120 स्तम्भ थे और इन्हीं स्तम्भो पर मदिर की छत अड़ी हुई थी

ओर इटली के निवासी तो उस आदमी को एकदम अभागा आदमी समझते थे, जो अपने जीवन मे एक बार उस मूर्ति का दर्शन नही कर पाता था।

संसार का वह महान आश्चर्य आज पूर्णरूप से वर्तमान में नहीं है ग्रीस का वह गौरव महान काल के गाल मे समा गया है। निर्मम ... हाथो ने कलाकार की आभा के उस अनुपम एवं अद्वितीय सोपान को छिन्न भिन्न कर दिया है अब उसके कुछ अवशेष मात्र बचे हुए है। मन्दिर के ... 120 स्तम्भों मे से जिन पर मन्दिर की छत खडी थी, सोलह स्तम्भ आज भी खडे हुए है। इनमें से प्रत्येक स्तम्भ की लम्बाई चालीस हाथ की है।

कलाकार फिडियस की कृतियों का अद्‌भुत नमूना आज भी ग्रीस में देखने को मिलेगा। एथेन्स नगर मे उसका बनाया हुआ एक मन्दिर "मिनर्वा मन्दिर" आज भी फिडियस की कलाकारी का अद्‌भुत नमूना है। संसार में आज मिनर्वा के इस मन्दिर के मुकाबले मे कारीगरी का सुन्दर नमूना ... देखने को कही नही मिलता। मिनर्वा ग्रीस निवासियो की देवी है। अत्यन्त ही प्राचीनकाल से इस देश के निवासी देवी मिनर्वा का पूजते आ रहे है। मिनर्वा देवी के इस मन्दिर को बनाने मे फिडियस ने अपनी कला का अद्‌भुत चमत्कार दिखलाया है। उसकी कारीगरी का अपूर्व नमूना देखना एव उसका सच्चा सौन्दर्य पान करना तो तभी संभव हो सकता है जब एक बार उसे देखने का सौभाग्य प्राप्त हो।

यह मन्दिर भी संगमरमर के पत्थरों से बना हुआ है। बडे आश्चर्य की वस्तु इसमे यह देखने को मिलती है कि कलाकार फिडियस ने उस मन्दिर के द्वार पर मिनर्वा देवी के जन्म की पूरी कथा अंकित कर रखी है। मिनर्वा देवी की जो मूर्ति फिडियस ने बनाई थी, दुर्भाग्य से वह मूर्ति भी आज विद्यमान नही है। विद्वानो का कहना है कि सम्राट पैरिक्लियस की मृत्यु के सवा सौ वर्ष बाद उस मूर्ति को लोगो ने तोड-फोड दिया (किन लोगो ने तोडा, इसका उल्लेख नहीं मिलता)। पर सौभाग्य से मन्दिर आज भी ज्यो का त्यों खडा है। मूर्ति के सम्बन्ध-में विद्वानों का मत है कि उसका मूल्य लगभग 20 लाख रुपये होगा। वह मूर्ति 25 हाथ ऊँची थी तथा सोना एव हाथी दात से बनाई गई थी। इस मन्दिर के बनवाने में भी सम्राट पैरिक्लियस ने अपरिमित धनराशि व्यय किया था। कहते है कि इन मूर्तियों के निर्माण के लिये सम्राट दूर-दूर देशो से हाथियों को मगाने के लिए अपने विश्वसनीय आदमियों को भेजता था हाथियो को मारकर उनके दात जड से खोदकर काम में लिये जाते थे और उन्हीं से उन प्रतिमाओ का निर्माण हुआ था

समय के साथ-साथ सब कुछ मिट जाता है। उसी प्रकार जुपीटर की वह महान् आश्चर्य जनक प्रतिमा अब संसार में विद्यमान नहीं है। परन्तु जिन पुराने यूरोपीय विद्वान अन्वेषकों ने उन्हे देखा था उनके वर्णन आज भी यत्र तत्र पढने को मिलते है। वे वर्णन काफी सजीव है एव कला कृतियों में की गई अद्भुत कारीगरी का प्रमाण यह है कि उन्हे पढ कर ही हमे आश्चर्य मे डूबे रह जाना पडता है। एक ऐसे काल में जब आदमी के पास आज के जितने साधन नही थे, वैसा काम करना जैसा आज के अच्छे से अच्छे संसार प्रसिद्ध कलाकार भी नही कर सकते बडे अचम्भे की बात है। काश, आज भी वे प्रतिमाएं विद्यमान होती, संसार के लोग उनसे बहुत कुछ सीख सकते थे।

जैसे-जैसे ग्रीस की सस्कृति एवं सभ्यता का ह्रास होता गया। वैसे ही वहाँ की स्मृतियाँ भी मिटती गई। महाकवि होमर का ग्रीस, विश्व विजेता महान सिकन्दर का ग्रीस, विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो और अरस्तू का ग्रीस अब एक मात्र पौराणिक अवशेषों के रूप मे ससार मे विद्यमान है पर उसकी महानता आज भी वैसी ही वर्तमान है और संभवत आने वाले हर समय मे भी वह पुकार-पुकार कर संसार को अपनी गौरव गाथा सुनाता रहेगा।



भारत में एलोरा और अजन्ता की गुफाएँ

संसार के महान् आश्चर्यो में भारत में एलोरा और अजन्ता के गुफा मन्दिर अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन गुफाओं मे जो चित्रकारी की गई है, उन्हे देखने से ही इनकी महानता का वास्तविक मूल्याकन हो सकता है। ससार के अन्य देशों में भी अनेक गुफा मन्दिर हैं पर एलोरा और अजंता से उनकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। अब तक ससार के भिन्न-भिन्न देशो के हजारो और लाखो कलाकार एव विद्वानो ने इन गुफामन्दिरो को देखा है और मुक्त कंठ से इनकी प्रशसा की है। प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष कला के क्षेत्र मे ससार का अग्रणी रहा है। जिस प्रकार इस देश ने विश्व के अनेक अधकूप में पड़े देशो को शिक्षा, सस्कृति और सभ्यता की सीख दी है, वैसे ही कला के क्षेत्र मे भी इसने ससार का नेतृत्व संभाला है। आज भले ही पश्चिम के राष्ट्र अपनी कलम और कूंची तथा छेनी और हथौडी का पराक्रम दिखलाते हो, पर आज जो कुछ भी उनके पास है, वह सब उन्हें भारत की ही देन है। ससार के बडे-बडे विद्वान भी आज यह अस्वीकार करने की हिम्मत नही रखते कि भारत ने ही वास्तव में उन्हें शिक्षित तथा सुसस्कृत बनाया है।

एलोरा की गुफाएँ

हैदराबाद गोदावरी वैली रेल्वे लाइन पर एक नगर है औरंगाबाद। औरगाबाद रेल्वे स्टेशन के समीप ही एक गांव है जिसे 'ऐलोरा' गांव कहते है। हम यहाँ जिन गुफाओ का उल्लेख करने जा रहे हैं, वे इसी गाव मे पडती हैं।

अंग्रेजी की एक पुस्तक है 'केव टेम्पल्स ऑफ इंन्डिया' अर्थात भारत के गुफा मन्दिर इस पुस्तक मे एलोरा और अजता के गुफा मन्दिरो का अनूठा

एवं विषद चित्रण किया गया है। पुस्तक पढने के बाद ही हमें पता चलता है कि वास्तव मे आदमी ने अपनी कारीगरी का कैसा विचित्र एव प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक के लेखक एक अग्रेज विद्वान हैं। जिन्होने इस पुस्तक के लिये प्रामाणित सामग्री एकत्र करने मे वर्षो का समय व्यतीत किया था। वैसे तो इन गुफाओं को देखने के बाद हममें से कोई भी इनकी महानता को समझ सकता है पर इस पुस्तक में हमे इन गुफा मन्दिरों के निर्माण की कहानी का भी सजीव वर्णन पढने को मिलता है।

औरंगाबाद रेल्वे स्टेशन से लगभग चौदह मील की दूरी पर एलोरा ग्राम बसा हुआ है। इस गाव को लोग कई नामों से पुकारते है। कोई एलापुर, कोई वलरू और कोई यलुरू आदि नाम लेते हैं। पर प्रचलित नाम एलोरा ही है और इसी नाम से यह ससार में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। पहले यह गांव हैदराबाद के निजाम की रियासत में पडता था। पर अब स्वतंत्र भारत का एक सुखी ग्राम है।

एलोरा ग्राम के सम्बन्ध में एक कहानी भी प्रचलित है। कहते है, आठवीं सदी में यहां एक हिन्दू राजा राज्य करता था, उसका नाम 'यदु' था। उसकी राजधानी एलिचपुर में थी। उसी ने 'एलोरा' ग्राम को बसाया था। इस कहानी के प्रमाण में इतिहास के पन्ने मौन हैं। पर लोगो में इसी बात का प्रचार है और लोग इसी को सत्य मानते है। जो भी हो, जिस गुफा मन्दिर का हम उल्लेख कर रहे हैं, वह इसी गाव में, आबादी से आधी मील की दूरी पर स्थित है। ये मन्दिर लम्बाई में लगभग डेढ़ मील लम्बे हैं। दसवी शताब्दी की एक भौगोलिक पुस्तक मे भी इन गुफा मन्दिरों का उल्लेख हमें मिलता है। अरब के एक भू-शास्त्री ने एक पुस्तक लिखी है, उसमें मन्दिर की बनावट आदि का कोई वर्णन नहीं दिया गया है। परन्तु स्थान विशेष का उल्लेख पढने से जान पडता है कि वह वर्णन एलोरा के गुफा मन्दिरों का ही है। कहा जाता है कि सर्वप्रथम इन गुफा मन्दिरो के सम्बन्ध में पूरी जानकारी लोगो को सन् 1306 ई. में हुई। इन दिनो अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली की गद्दी पर शासन करता था। कहते है कि गुजरात के बादशाह की कन्या कमला देवी बचने के लिए भाग कर एलोरा के गुफा मन्दिर मे ही छिपी थी। अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर को इसका पता चल गया था। उसने कमला देवी को यही गिरफ्तार कर लिया और दिल्ली भेज दिया था। इससे पता चलता है कि उस जमाने के लोगो को काफी पहले से ही ऐलोरा की गुफाओ की पूरी   थी यदि ऐसी बात न होती तो गुजरात नरेश की पुत्री वहा

कैसे पहुँच पाती। उसने उन गुफा मन्दिर को अपनी सुरक्षा के लिये सर्वोत्तम स्थान समझा था और इसीलिये उसकी शरण मे गई थी।

एलोरा मे मन्दिरों की सख्या कुल चौंतीस हैं। इनमे बौद्धो के वारह मन्दिर है, जैनियों के पाच और हिन्दुओ के सत्तरह। इस प्रकार हिन्दू मन्दिरो की संख्या बौद्ध और जैनियों के मन्दिर के वरावर ही है। इन मन्दिरों की वनावट को देखकर लोग दांतो तले अंगुली दवाते है। वैसे तो भारत में पर्वतो को काटकर मन्दिर वनाने का रिवाज वहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्राचीन काल में ऐसे अनेक मन्दिर वनाये गये है, पर एलोरा के टक्कर के कोई भी मन्दिर नहीं बन पाये हैं।

हिन्दुओं, वौद्धों तथा जैनियों के मन्दिर सव एक दूसरे से सटे हुये है। बौद्धो के मन्दिर दक्षिण की ओर वनाये गये हैं और जैनियों के मन्दिर उत्तर की ओर बने हुए है। हिन्दुओं के मन्दिर वौद्ध और जैन मन्दिरो के वीच मे वने हुए हैं। ये सभी मन्दिर पहाड को काट कर गुफाओ के भीतर वनाये गये हैं। गुफाओं की लम्वाई उत्तर से दक्षिण तक लगभग डेढ मील की है मन्दिर गुफाओं के भीतर एक ढलुये पर्वत को काटकर वनाये गये हैं। प्रत्येक गुफा के सामने एक सुन्दर मनोरम आगन-सा वना हुआ है। गुफा के भीतर घुसने पर, उनकी दीवारों की चित्रकारी और बनावट को देखकर हम आश्चर्य चकित रह जाते हैं। आजकल के वडे-वडे कारीगरो का सिर इनको देखते ही विस्मय से चकराने लगता है।

गुफाओं के भीतर की दीवारों पर विभिन्न रंगों में चित्रकारी की गई है। रंग बिरंगे वेल-वूटो, चित्रों और फूल-पत्तियो को देखते ही वनता है। प्रतिमाओ के चेहरो पर जिन भावो की अभिव्यक्ति होती है, जो तरह-तरह की आकर्षक जालियां आदि वनी है, उन्हें देखकर वडा से वडा कलाकार भी आश्चर्य में डूवे विना नहीं रहता है।

जव से भारत की इस कलाकारी का पता पश्चिम के राष्ट्रो को चला है तव से लाखो यूरोपीय विद्वानों ने इन्हे देखा है और इनकी भूरि-भूरि प्रशसा की है। विलायत के एक प्रसिद्ध विद्वान तथा कलामर्मज्ञ ने एलोरा के गुफा मन्दिरो को देखने के बाद जो उद्‌गार व्यक्त किए वह वास्तव में उन महान कलाकारो के प्रति उनकी हार्दिक श्रद्धाजलि थी, जिन्होने ससार के सामने ऐसे आश्चर्यो को विचित्र किया। उस अंग्रेज कलापारखी ने कहा—"एलोरा के चित्र प्राचीन भारतीय कला के अद्‌भुत उदाहरण है। सभवत उस समय जब पश्चिम के अनेक देश और प्रत्याक्रमण की आग मे झुलस रहे थे

भारत के कलाकार पत्थरों में जान डालने मे व्यस्त रहे थे। इन कला-कृतियो के मुकाबले में आज ससार मे दूसरा उदाहरण दृष्टिगत नही होता। यद्यपि वे महान् कलाकार जिन्होने अपनी छेनी और हथौडे से पत्थरों मे जान डाल दी, अब नहीं रहे पर उनकी इन कृतियो के देखने मात्र से उनकी आत्मा का स्पन्दन सुनाई पडता है।''

गुफा मन्दिरो की चित्रकारी को देखकर कोई भी आश्चर्य प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। कलाकारों ने इनके निर्माण मे जिस अद्भुत कला का परिचय दिया है, उन्हे देखने से पुराणों की बडी-बडी प्राचीनतम कहानियो का प्रत्यक्ष चित्र आखो के सामने झलकने लगता है।

इन्ही मन्दिरो में ''कैलास'' नाम का एक मन्दिर है। विद्वानो का मत है कि इस मन्दिर के मुकाबले ससार के किसी भी कोने में दूसरा कोई मन्दिर नही है। आज तक पहाडो को काटकर जितने भी मन्दिर भारत अथवा ससार के दूसरे हिस्सों में बने है, 'कैलास' का यह मन्दिर उन सभी मे बढ बढकर है। उसके टक्कर मे दूसरा कोई भी मन्दिर नही है। एलोरा के चौंतीस मन्दिरो में 'कैलास' का मन्दिर कला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। वैसे तो वहाँ जितने भी मन्दिर है, वे सब अपना अलग-अलग विशिष्ट स्थान रखते है। पर हिन्दुओ के मन्दिर सामान्यतया बौद्धों और जैनियों के मन्दिरो से अधिक सुन्दर तथा आकर्षक है।

हमने पहले ही बताया है कि एलोरा के इन गुफा मन्दिरों में हिन्दुओ के मन्दिरों की सख्या सत्रह है। उनमे आठ मन्दिर मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। ये आठों मन्दिर—कैलाश मन्दिर या रगमहल, लकेश्वर, रामेश्वर, नीलकंठ धुमारलेन अथवा सीता की बापडी, दशावतार, देवबाडा और रावण की खाई नाम के हैं। ये ही आठो मन्दिर विशेष रूप से प्रसिद्ध तथा आकर्षक हैं। इन मन्दिरों मे से सबसे अधिक मूर्तियाँ 'रावण की खाई' नामक मन्दिर मे है। अनेक मूर्तियाँ अभी भी ऐसी हैं जिनमें कही से कोई खराबी नहीं आई है। उनको देखने से ऐसा जान पड़ता है, मानो अभी हाल ही मे उन्हे बनाया गया हो।

पुरातत्ववेत्ताओं का कहना है कि एलोरा में जो बौद्ध मन्दिर है उनका काल 450 और 650 ई सन् के भीतर का है। बौद्ध मन्दिरो में 'सुनार का झोपडा' अथवा 'विश्वकर्मा' नाम का मन्दिर अत्यधिक भव्य और सभी मे सुन्दर है। इस मन्दिर के चारों तरफ बरामदा है, और इसके आगे का भाग खुला हुआ है मन्दिर के भीतर का हिस्सा 65 फुट लम्बा और 45 फुट चौडा

है। मन्दिर के स्तम्भों की ऊँचाई चौदह फुट है। उन मन्दिरों में दोनो ओर अवलोकितेश्वर बुद्ध की प्रतिमाये है। कही-कही पर सरस्वती और मजुश्री की प्रतिमाए भी प्रतिष्ठित की हुई है। विद्याधर को इन प्रतिमाओं की पूजा करते हुए दिखलाया गया है। बुद्ध की मूर्ति वडी ही सुन्दर एवं आकर्षक है। उनके एक हाथ मे माला तथा दूसरे हाथ मे कमल तथा कधे पर मृगछाला सुशोभित है। उनकी मुद्रा देखने से ही पता चल जाता है कि वे अभय तथा धर्म-चक्र की स्थिति मे है। बौद्धो के वारह मन्दिरो मे इसी ढग की अनेक मूर्तियॉ है पर 'विश्वकर्मा' मन्दिर की मूर्तियॉ अधिक आकर्षक और सुन्दर हैं।

जैन-मतावलम्बियों के पॉच मन्दिरों में दो मन्दिर सबसे बडे और अधिक सुन्दर है। इन मन्दिरों के नाम 'इन्द्र सभा' और ''जगन्नाथ सभा है। पर इन मंदिरों को देखने से ऐसा जान पडता है जैसे इनका निर्माण पूर्ण नहीं हो पाया हो। कही-कही से इनमें काम के अधूरा ही छोड दिये जाने का पता चलता है। 'इन्द्र सभा' मंदिर वडा ही भव्य है। इसमे कई एक वरामदे, कई आंगन आदि हैं। इसकी छत की बनावट बड़े आश्चर्यमय ढंग से की गई है। मन्दिर के स्तम्भ, भी वडे आकर्षक ढंग से काटे छांटे गये हैं और देखने मे बडे विचित्र मालूम पडते हैं। इन मंदिरों मे पार्श्वनाथ महावीर आदि की अनेक आकर्षक भव्य मूर्तियॉ हैं। दिगम्बर जैनियों के मन्दिरों मे गोमतेश्वर की भी एक प्रतिमा स्थापित है। मूर्तियो के पास-पास और भीकई मूर्तियॉ है, जो संभवत बाद की स्थापित की हुई हैं।

इन मन्दिरों के निर्माण कार्य का अभी तक कोई निर्णय नही हो पाया है। विद्वानों में इस विषय पर पूर्ण मतभेद है। अधिकतर लोग इसी कथा को प्रमाण समझते हैं कि आठवी शताब्दी के आस-पास यदु नामक राजा के राज्य काल में ही इन मन्दिरों का निर्माण हुआ होगा। इस विषय पर लोगो का मतभेद भले ही हो, पर इन मन्दिरो के अद्वितीय होने में विश्व के सभी विद्वान तथा कलामर्मज्ञ एक मत है। भारत की प्राचीन कला की ये स्मृतियॉ आज भी विद्यमान हैं और आज भी संसार के लिये अत्यन्त आकर्षण का केन्द्र है।

अजन्ता की गुफाएं

एलोरा की गुफा मन्दिरों की तरह दक्षिण हैदराबाद मे अजन्ता की पहाड़ियो मे अनेक गुफाएँ हैं जिनमें भारतीय चित्रकला अपना अपार वैभाव

लेकर देदीप्यमान हो उठी है। इन गुफाओ मे तत्कालीन एव प्राचीन भारत के वैभव की कथा बडे ही रोचक ढग से चित्रित की गई है। इन गुफाओं में कलाकारों ने जिस कला का जीवित चित्र प्रस्तुत किया है वह धरती पर अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

अजन्ता के इन चित्रो मे भारत के प्राचीन समाज का साक्षात्कार तो देखने को मिलता ही है, साथ ही साथ उस जमाने मे भारतीय कला किस प्रकार एक शिखर पर पदस्थ थी इसका भी परिचय मिलता है। अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी को देखकर भारत का प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास मष्तिष्क के पट पर चित्रित हो उठता है और तब अनायास ही आज की अपनी दयनीय अभिज्ञ स्थिति को देखकर हमे मौन रह जाना पडता है।

अजन्ता की इस प्रसिद्ध अलौकिक चित्रकारी के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध अंग्रेज गेफिथ साहब ने कहा है, ''करूण ओर मनोवेग एवं अपनी कथा की अभिव्यक्ति करने की यह निर्भान्त शैली विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है। इस दृष्टि से अजन्ता की चित्रकला का इतिहास मे अप्रतिम स्थान है। यह सभव था कि फ्लोरेन्टा के कलाकार इनमें सुन्दर रेखायें डाल देते, और वेनिस के कलाकार आकर्षक रग भर देते पर उनमें से कोई भी इससे सुन्दर भाव इनमे नहीं भर सकता था।''

प्रसिद्ध अग्रेज विद्वान के उपर्युक्त उद्‌गारो को पढकर हम सहज ही अजन्ता की चित्रकारी की महानता का आभास पा सकते है। जिस समय यूरोप के प्रसिद्ध देश रोम और यूनान विलासिता और लडाई झगडे के मध्य अपने विनाश की होली खेल रहे थे, उस समय भारतीय कला अनेक रूपो में हमारे देश में स्वर्ण युग की रचना करने मे व्यस्त थी। अनेक शिल्पकारों ने एलोरा औरअजन्ता की कन्दराओं में अपनी छेनी और हथोडे से हमारे स्वर्ण युग के इतिहास का निर्माण कर ससार के सम्मुख अपनी कला का अपूर्व रूप प्रस्तुत किया था। न जाने तब स कितने ही बार भारत की धरती रक्त कीधारा से लाल-लाल हो उठी, कितने ही लुटेरो और आक्रमणकारियो के क्रूर प्रहारो का आघात इस देश की छाती पर पडा पर हमारे देश के गौरव का चित्रमय इतिहास अपनी गोद मे छिपाये अजन्ता और एलोरा की पहाडियाँ अनगिनत प्रहारो को सहती रही है।

जिन दिनो का जिक्र हम लिख रहे है, उन दिनो भारत में गुप्त वंश का राज्य था। गुप्त वश के यशस्वी सम्राटो का आश्रय पाकर ही भारतीय

कलाकारो ने इस युग के इतिहास का मार्मिक एव प्रभावोत्पादक चित्रण प्रस्तुत किया था। वास्तव में अजन्ता की चित्रकारी गुप्त साम्राज्य के सौन्दर्य, और अपरिमित गुण राशि का सजीव सग्रहालय है।

अजन्ता में अनेक गुफाएँ है। इनमें सख्या सत्रह की गुफा की एक दीवार पर एक वडा ही आकर्षक चित्र देखने को मिलता है। इस चित्र को अनेक विदेशी कलाशास्त्रियो ने ''प्रियतमा राज कन्या'' की संज्ञा दी है। उनका कहना है कि यह चित्र किसी राजकन्या का है। इस चित्र में जिस मार्मिक आशय की अभिव्यक्ति कलाकार ने की है, वह अद्धितीय है। चित्र मे राजकन्या की झुकी हुई पलकों मे सांसारिक ज्योति का अपहरण हो चुका है। प्यार मिश्रित अतिम विदा के प्रतीक रूप उसकी उगलियाँ समीप बैठी हुई एक कन्या के हाथ पर झूल गई हैं और वह बालिका अविश्वास, आशका और जिज्ञासा के भाव लेकर अपनी व्यग्रता प्रकट करती हुई विपत्ति का फल जानने के लिये उत्सुक सी दीख पडती है। अन्तिम क्षणों में झुके हुये अगो के कारण हाथ खीच लेने से मृत्यु की जीत निश्चित हो जाती है। यह अवर्णनीय दुख चारों तरफ बैठी हुई सेविकाओं के मुखों पर परिलक्षित भावो से और भी स्पष्ट हो जाता है।

कला की दृष्टि से अजन्ता का यह चित्र सर्वोत्तम तथा विश्व मे अप्राप्य है। खोज करने के पश्चात् इतिहासवेत्ताओ ने यह निर्णय किया है कि यह चित्र सम्राट प्रवरसेन की पुत्री नयनिका का है। यह चित्र कैसे बना, किसने बनाया? इस सम्बन्ध में इतिहासवेत्ताओं का कहना है कि इसे भारत के यशस्वी कलाकार आचार्य सुनन्द ने बनाया था। कहते है कि सम्राट प्रवरसेन के राजकीय विद्यालय के आचार्य सुनन्द ही थे। महाराज प्रवरसेन कादण्डनायक नागदत्त था जो बौद्ध मतावलम्बी था। राजकुमारी नयनिका आचार्य सुनन्द क आश्रम मे शिक्षा प्रात करना चाहती थी। नागदत्त को यह जानकर आचार्य के प्रति इर्ष्या हो गई। वह सन्देह करने लगा था कि राजकुमारी का झुका्व आचार्य की ओर दिन-प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। तभी से वह आचार्य सुनन्द को आश्रम से निकलवाने का प्रयत्न करने लगा। अत मे उसे इस काम में सफलता भी मिल गई। नागदत्त ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि आचार्य सुनन्द को आश्रम को छोडकर चला जाना पडा। राजकुमारी को जब यह खबर मिली तो वह बहुत ही दुखी हुई। तभी स वह विक्षिप्त सी रहने लगी। उधर आचार्य आश्रम त्याग कर अजन्ता की गुफाओं मे चले गये। उन दिनो अजन्ता बौद्धो के विह र के रूप में था राजकु मा री को जब यह पता चला तो वह आ चा र्य

के पास गुफाओं मे पहुच गई। वहा पहुचने पर राजकुमारी ने देखा कि एक भीत पर उसकी मूर्छित अवस्था का चित्र अकित है। उसने आचार्य से प्रार्थना की कि मुझे अपनी शिष्या स्वीकार करें। पर आचार्य ने अस्वीकार कर दिया।

इस महान् आश्चर्यजनक चित्र के निर्माण की यही कथा है। आचार्य सुनन्द के हाथो का वह चित्र आज विश्व के कलाकारो के लिये श्रद्धा और आश्चर्य का विषय बना हुआ है। अजन्ता के सभी गुफा मन्दिर एक से एक बढकर सुन्दर हैं। जिस प्रकार पहाडो को काट कर इन गुफा मन्दिरों को बनाया गया है, उससे हमे उस समय के भारत की गुप्त कालीन कला का सर्वोत्तम उदाहरण मिलता है।

सर्वप्रथम जब इन गुफा मन्दिरों का पता चला, तो लोगो ने यह अनुमान लगाया था कि सभवत ये संसार मे मूर्ति एवं शिल्पकला के सब से प्राचीन उदाहरण है। उस समय ये गुफाएं मिट्टी और पत्थर के छेदो से भर गई थी, और उन्हें देखकर उनके निर्माण काल का अन्दाज लगाना संभव नही था। अत· उनकी आकृतियों और स्थिति को देखकर लोगो ने यही समझा कि ये विश्व की सर्व-प्राचीन कला-कृतियाँ हैं। पर बाद में गुफाओ की सफाई होने पर बुद्ध की मूर्तियो एवं बौद्ध विहारों को देखा गया औरनिर्णय किया गया कि गुप्त-कालीन समय में ही इनका निर्माण हुआ था।

हेमाद्री की पहाड़ियों में, हैदराबाद रियासत में, अजन्ता नामक ग्राम से थोडी दूर पर ये गुफाये अवस्थित हैं। सर्वप्रथम लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व अग्रेजों को इनका पता चला और सन् 1843 ई मे जेम्स फरग्यूसन नामक प्रसिद्ध अग्रेज विद्वान ने इन गुफा मन्दिरों के सम्बन्ध मे ससार के सामने लेख आदि प्रस्तुत किये। जिस समय फरग्यूसन साहब ने इन गुफाओ को देखा था, तो इन्हें देखकर वे दग रह गये थे। उनके विचार में प्राचीन रोम की मूर्ति कला एवं मध्य कालीन रोम की शिल्पकला का भी वैसा विकास नही हुआ था, जैसा कि अजन्ता की मूर्तियो को देखने से मालूम पड़ता था। उन्होने लिखा है—

'अजन्ता की प्रतिमाओ मे जो सौन्दर्य है, उनके चेहरे के भावों मे जो अभिव्यक्ति भरी हुई है, वह ससार मे अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। मूक पत्थर की मूर्तियो को देखने से जान पडता है, वे अब बोलना ही चाहती हैं। दो हजार वर्ष पूर्व भी भारत मे शिल्प कला का इतना व्यापक विकास हुआ था कि वे ससार के कलाकारो के नेतृत्व करने का दावा कर सकते थे पर दुख

है कि काफी समय तक संसार को भारत के इस गौरव की जानकारी नहीं हो सकी। यद्यपि निश्चित रूप से इनके निर्माण की तिथी नहीं वताई जा सकती पर इनको देखने से साफ पता चलता है कि वौद्ध धर्म का भारत से लोप होने से पूर्व ही इनका निर्माण हुआ था। प्राय सातवी शताब्दी के पश्चात् से वोद्धों का यह अत्यन्त ही रमणीक विहार वीरान और सूनसान पडा रहा था अजन्ता के चित्र आदमी की कला के सर्वोत्तम पृष्ठों मे सजोने योग्य हे, इसमे तनिक भी सदेह नही।''

जैम्स फर्ग्यूर्सन साहव के शब्दों से स्पष्ट है कि अजता के चित्र संसार मे विशिष्ट स्थान रखते है। अजता की गुफा में कुल मिलाकर पाच मन्दिर है और चौवीस वौद्ध विहार है। ये मंदिर और वौद्ध विहार पहाडी के ढलुये हिस्से को लम्वे रूप में काट कर वनाये गये हैं। गुफाओं की ऊँचाई 250 फीट की वताई जाती है। सर्वप्रथम जव गुफाओं का पता चला था, तो वे जगह जगह से कीचड आदि से भर गई थी, पर अव उनकी सफाई कर दी गई है। जिस पर्वत को काटकर गुफा वनी हुई है, उसके ऊपर एक सुन्दर पानी का झरना है। वनाने वालो ने स्थान का चुनाव करते समय अत्यधिक वुद्धिमानी से काम लिया था। ऊपर कल-कल विनाद से झरना प्रवाहित होता है और नीचे अत्यन्त ही रमणीक गुफा के भीतर आकर्षक मन्दिर और बिहार बने हुए हैं।

इन गुफा मन्दिरों में कुछ हिन्दुओं के मन्दिर भी हैं। विद्वानों का कहना है कि इनका निर्माण वाद में हुआ था। क्योंकि एक तरफ जो वौद्ध मन्दिर तथा बिहार हैं वह हिन्दुओ के मन्दिरो से अधिक पुराने मालूम पडते है। बौद्धो के मदिरों का निर्माण काल ईस्वी सन् से दो सौ वर्ष पूर्व निर्णीत किया गया हे। परन्तु इस वात पर विद्वानों का मतभेद है। चाहे जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि जव भारत में वौद्ध धर्म का पूर्ण विकास हो चुका था, तभी इन गुफा मन्दिरों का निर्माण हुआ था। उस काल में यहा पर बडे-वडे वौद्ध-भिक्षुक रहा करते थे औरवौद्ध मतावलम्वियो का यह प्रसिद्ध विहार रहा होगा।

अजंता के मंदिरों का निर्माण वडी दक्षतापूर्ण ढंग से किया गया है। विहार चौकोने वाले वने हुए हैं। उनमें तीन तरफ भिक्षुकों के रहने के लिये सुन्दर आवास वने हुए हैं। सामने की तरफ एक बरामदा है जिनमे कई स्तभ है। मंदिरों पर जो चित्रकारी आदि की गई है उन्हें देखने से बडा आश्चर्य

होता है। बड़े-बड़े कारीगर उन्हें देखकर आश्चर्य चकित रह जाते है। मन्दिरों की काट छाट, चित्रकारी आदि को देखकर एक बार एक कुशल यूरोपीय कारीगर ने कहा था--''जो चित्रकारी इन पत्थरो पर की गई है वह तो किसी अच्छे से अच्छे कारीगर के लिये लकड़ी पर कर सकना भी असम्भव है।''

मन्दिर के भीतरी हिस्सो में जो चित्रकारी विभिन्न रगो मे की गई है वह तो और भी अद्भुत और आश्चर्य में डालने वाली है। भीतर की दीवारों पर पत्थरों को खोदकर और रंगों से भी अनेक प्रकार के मोहक चित्र बनाए गए है, जिन्हे देखकर देखने वाला अवाक् रह जाता है। भीतर महात्मा बुद्ध का सपूर्ण जीवन चरित्र एक भिक्षुक के साथ उनकी वार्तालाप आदि की विभिन्न भावोत्पादक मुद्राओं मे देखने को मिलता है। युद्ध, घरेलू कार्यों आदि के भी कितने ही चित्र अकित हैं जिनसे तत्कालीन भारत के इतिहास की भी झलक मिलती है। दुर्भाग्यवश अब इनमें से कई सुन्दर चित्रो में भरा गया रंग कही-कहीं से झीना पड़ गया है। पर तो भी उनकी महानता और कला विशिष्टता में कोई अन्तर नही आया है।

गुफा के भीतर बाहर से प्रकाश पहुंचाने मे कारीगरों ने जिस बुद्धिमता का परिचय दिया है, वह तो निश्चय ही सराहनीय है। इस सम्बन्ध में जेम्स फर्ग्यूसन साहब लिखते हैं--

''गुफा मे एक छिद्र से प्रकाश आता है और उसी से सारी गुफा मानों जगमग हो उठती है। मन्दिरों और उनके भीतर की मूर्तियो पर भी उसी से प्रकाश पहुँचता है और भीतर घुस कर देखने वाले को कही अंधकार का सामना नहीं करना पड़ता है। वेदी पर प्रकाश पूर्ण रूप से पड़ता है। दर्शक स्वय तो उसकी छाया मे खड़ा हो जाता है। गुफा का समस्त भाग उसी एक छिद्र के प्रकाश से मानो जगमगा उठता है। इस प्रकार की रोशनी की यह व्यवस्था संसार में अनूठी है। कारीगरो ने किस खूबी के साथ उस छेद का निर्माण किया है, कि हर समय सूर्य की रोशनी बराबर रूप से उस छेद से होकर गुफा में पहुंचती है। वास्तव मे यह विश्व की महान् आश्चर्यजनक वस्तु है।''

सौभाग्य से भारत की यह कृति अभी तक अक्षुण्य है। तब से आज तक अनगिनत गुफाएँ और गुफा मन्दिर विश्व के अन्य देशों मे बने होगे पर उनमे न कोई कला-वैचित्र्य है और न वे सुन्दर ही हैं। अनेक दृष्टियो से अजन्ता और एलोरा के गुफा मन्दिर विश्व मे सर्वोत्तम है संसार के अब तक हजारो

प्रसिद्ध कला-मर्मज्ञों एव विद्वानों ने इन्हें देखा है और इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

अव से दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत में शिल्प कला का कितना विकास हुआ था इसका पता हमें अजन्ता और एलोरा के गुफा मन्दिरों को देख कर चल जाता है जव से इन गुफा मन्दिरो का पता चला है, तव से अव तक कितने ही कवियो और लेखकों ने उन अमर कलाकारों के गुणगान से अपनी लेखनी को धन्य किया है।



एपोलो की रोड्स द्वीप स्थित पीतल की मूर्ति

पिछले पृष्ठो मे हमने ग्रीक देश की कला मर्मज्ञता का उल्लेख किया है। जुपीटर की विश्वप्रसिद्ध मूर्ति इसी देश के महान कलाकार की अलौकिक कृति थी। अब हम इसी देश की एक दूसरी आश्चर्य जनक वस्तु का उल्लेख कर रहे हैं। भूमध्य सागर में एक टापू है जिसका नाम 'रोड्स द्वीप' है। इस द्वीप के इतिहास से पता चलता है कि सर्वप्रथम यूनान के लोग ही यहाँ पर पहुँचे थे और अपने निवास के लिए मकान आदि बनवाये थे। वे वीर और साहसी थे और युद्ध विद्या में पूर्ण निपुण थे। उन्होने अपनी शक्ति से रोड्स द्वीप के आस-पास के अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया था।

अत्यन्त प्राचीनकाल मे रोड्स द्वीप के रहने वाले लोग भी सभ्य और सुसंस्कृत थे। रोड्स द्वीप की भूमि बडी उपजाऊ है और वहां खाने की प्राय सभी वस्तुये पैदा होती हैं। फल-फूल के लिये तो पृथ्वी का यह हिस्सा बहुत ही प्रसिद्ध है। कहते हैं कि जब यूनानी (ग्रीक) लोगो ने इस द्वीप मे प्रवेश किया तो उन्होने एक ऊंचे पर्वत पर अपनी राजधानी बनाई। राजधानी को खूब सजाया गया। बडे-बडे सुन्दर-सुन्दर महल और देवी-देवताओ के मन्दिर बनवाये गये। धीरे-धीरे रोड्स द्वीप के निवासियों की अपनी एक अलग जाति बन गई। समयान्तर मे इस द्वीप को भी कितने ही आक्रमणो का सामना करना पडा। सिकन्दर महान् ने अपनी सेना लेकर इस पर आक्रमण किया और इसे अपने राज्य की सीमा मे सम्मिलित कर लिया। पर यहा के निवासी स्वतत्रता प्रिय थे। जैसे ही सिकन्दर की मृत्यु का समाचार मिला, द्वीप के निवासियों ने सिकन्दर की सेना को वहाँ से मार भगाया और अपनी स्वतंत्रता की घो णा कर दी सिकन्दर की सेना को मार भगाने के पश्चात ही रोदस

द्वीप के निवासियों ने मिश्र के तत्कालीन सम्राट टेलिभीर के साथ मित्रता कर ली। यूनान के सम्राट एण्टिगोनस को रोड्स और मिश्र की यह मित्रता पसन्द नहीं आई। उसने मिश्र और रोड्स की मित्रता में वाधा डालना शुरु कर दिया। जब इसमे उसे सफलता नहीं मिली तो उसने एक बहुत बडी सेना लेकर रोड्स द्वीप को चारो तरफ से घेर लिया। पर द्वीप के सैनिक ने अपनी वीरता का परिचय देते हुए एण्टीगोनस की सेना को पराजित कर दिया। अन्त मे एण्टिगोनस को सधि करनी पडी और उसके उपलक्ष्य में द्वीप के निवासियो को बहुत सी वस्तुए एवं धन देना पडा। उन वस्तुओ को द्वीप वालों ने वेचा जिससे उन्हें अपार धन प्राप्त हुआ। कहते है उसी धन से रोड्स द्वीप के निवासियो ने ससार के महान आश्चर्य एपोलो की भव्य मूर्ति का निर्माण करवाया।

एपोलो ग्रीक निवासियो के बडे प्रिय देवता हैं। रोड्स वाले एपोलो देवता की पूजा वड़ी श्रृद्धा के साथ किया करते थे। आज भी वहाँ एपोलो की पूजा लोग बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ किया करते हैं। कहते हैं कि एपोलो का जन्म मिश्र के देवराज जुपीटर और लाटोना से हुआ था। लोगों की धारणा है कि जुपीटर की आज्ञा से डिल्स नामक स्थान समुद्र के गर्भ से निकला था और उसी पर एपोलो और उनकी बहन डायना देवी पैदा हुए थे। उन दोनों के जन्म के समय अनेक देवी-देवता उन्हे देखने के लिए आए थे।

ग्रीक निवासियों में यह विश्वास है कि एपोलो शिल्प, सगीत, काव्य और औषध के देवता हैं। उन्होंने ही समस्त विद्याओं की रचना की है। इस देश के पौराणिक ग्रन्थों में एपोलो देवता के अनेक चरित्रो का उल्लेख पाया जाता है। एपोलो के शरीर और सौन्दर्य का वर्णन भी वडे रोचक ढंग मे लिखा गया है। यह भी लिखा गया है कि वे सदा युवा रहते है। उनके चेहरे की वनावट बडी सन्दर है और उनके सिर पर लम्वे-लम्वे केशगुच्छ शोभायमान है। आज भी रोम के निवासियो में एपोलो फैशन, का प्रचलन अत्यधिक है। अर्थात एपोलो की तरह सुन्दर और सजावट मे रहना रोम के निवासी पसन्द करते हैं।

हम जिस मूर्ति का उल्लेख कर रहे है वह इसी एपोलो देवता की मूर्ति थी। यह मूर्ति पीतल की वनी हुई थी। इसके निर्माण की कथा भी वडी रोचक है। कहते है कि इस मूर्ति के बनाने में रोड्स द्वीप के निवासियो ने लगभग वह सारा ही धन खर्च कर दिया था जो उन्हे एण्टिगोनस से सधि के मिला था उन दिनो लोगो मे मूर्तियो के प्रति बड

आकर्षण था और लोग बड़ी श्रद्धा से उन्हें देखते थे तथा उनकी पूजा किया करते थे।

कहते है कि रोड्स द्वीप की राजधानी मे दो बन्दरगाह थे। इन्ही बन्दरगाहो से द्वीप के निवासी बाहरी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये हुए थे उनमे एक बन्दरगाह के मुहाने की चौडाई बीस फीट थी और दूसरी की चौडाई पचास फीट की थी। ऐपोलो की वह भव्य विशाल मूर्ति दोनो बन्दरगाहों के बीच में एक मुहाने पर प्रतिष्ठित की गई थी। बंदरगाह मे जो भी जहाज आते-जाते उन्हें मूर्ति के अन्दर होकर जाना पडता था। पर इस बात का सही-सही निर्णय नही हो पाया है कि वह मूर्ति दोनों बदरगाहों के किस मुहाने पर स्थापित की गई थी। कुछ विद्वानो का कहना है कि जिस मुहाने की चौडाई पचास फीट थी उसी पर एपोलो की वह मूर्ति रखी गई थी और कुछ उसे बीस फीट चौडे मुहाने पर स्थापित होना बतलाते हैं। चाहे जो भी हो निर्द्वन्द्व रूप से वह मूर्ति विशाल थी और विश्व में अपना एक अनोखा स्थान रखती थी।

सर्वप्रथम अन्वेषको ने जब इस मूर्ति को देखा था, तो उन्हें बडा आश्चर्य हुआ था। इतनी विशाल मूर्ति का निर्माण समुद्र के मुहाने पर करना कोई मामूली बात नही थी। उस मूर्ति का एक पैर मुहाने की एक दीवार पर था और दूसरा पैर दूसरी दीवार पर। इस प्रकार वह मूर्ति पूरे मुहाने की चौडाई पर छाई हुई अपनी दिव्यता प्रकट करती हुई खडी थी। मूर्ति की लम्बाई व चौडाई का विचार करते हुये हम उसकी एक कल्पना मात्र कर सकते है। कहते है कि उस मूर्ति की उगलियॉ इतनी मोटी थीं कि कोई मनुष्य उसकी कोई उंगली पकडना चाहता तो अपने दोनो हाथों को फैलाकर भी नहीं पकड़ सकता था।

मूर्ति की लम्बाई का पता चलते ही एक बात का निर्णय हम कर लेते है कि वह वास्तव मे पचास फीट चौडाई वाले मुहाने पर ही स्थापित थी। उसकी लम्बाई 125 फीट अर्थात लगभग 83 हाथ की बताई जाती है। इतनी विशाल मूर्ति का पचास फीट (लगभग 35 हाथ) के चौडे मुहाने पर आर-पार की दो पर्वतीय दीवारों पर अवस्थित करना कितना कठिन काम रहा होगा, इस बात की कल्पना हम सहज ही कर सकते है। उस पीतल की विशाल मूर्ति के सम्बन्ध मे लोगो का कहना है कि भीतर से वह मूर्ति पोली थी और उस पर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढियॉ बनी हुई थीं। मूर्ति के सिर मे एक काफी बडा सा छिद्र था। मूर्ति के भीतर ही भीतर सीढियो से

चढकर लोग ऊपर मूर्ति के सिर तक चले जाते थे और फिर छेद से सिर वाहर निकाल कर मिश्र देश को आने जाने वाले जहाजों को देखा करते थे।

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वानों का कथन है कि ईसा के जन्म से तीन सौ वर्ष पहले वह मूर्ति द्वीप के मुहाने पर खड़ी की गई थी। हजारों साधारण कलाकार एवं दक्ष कलाकारों ने मिलकर उस मूर्ति को तैयार किया था। उसे तैयार करने में पूरे बारह साल लगे थे। पर दुर्भाग्य से वह मूर्ति केवल सत्तर वर्षो तक ही वहां खडी रह सकी। कहते हैं कि एक बार बहुत जोरों का भूकम्प आया। रोड्स द्वीप डगमगा उठा। उसी समय पृथ्वी के हिलने से वर्षो के श्रम का अद्‌भुत परिणाम पीतल की वह मूर्ति अपने स्थान से गिरकर नीचे आ पडी। रोड्स द्वीप के उस नगर के परकोटे भी धराशायी हो गये थे जहां वह मूर्ति स्थित थी। बाद में रोड्स द्वीप के निवासियों ने उस मूर्ति को पुन प्रतिस्थापित करने के अनेक प्रयत्न किये, पर उन्हे सफलता नही मिली। बहुत परिश्रम करके लोगों ने परकोटे (दीवार) की तो मरम्मत कर ली पर वह मूर्ति जहां पर वह गिरी थी वहीं पडी रही। उस काल से लेकर लगभग 865 वर्षो तक वह मूर्ति उसी अवस्था में जमीन पर पड़ी रही। रोड्स द्वीप वालो ने उसे पुन. खडा करने के लिये हजारों बार प्रयत्न किया, पर अन्त तक सफलता उन्हें नहीं ही मिली।

समयान्तर में रोड्स द्वीप पर से ग्रीक जाति वालो का आधिपत्य मिटता गया और सरासिन जाति के लोगों ने उस द्वीप पर अधिकार कर लिया। जब रोड्स पर सरासिन जाति के लोगो का अधिकार हुआ तब भी एपोलो देव की वह विशाल मूर्ति वैसे ही जमींन पर पडी हुई थी। इसी जाति के लोगो ने ससार प्रसिद्ध उस मूर्ति को एक यहूदी व्यापारी के हाथों बेच दिया। उसके बेचने से द्वीप वालो को बहुत सी सम्पदा मिली। कहते हैं कि वह यहूदी व्यापारी उस मूर्ति के पीतल को 900 (नौ सौ) ऊटों पर लाद कर ले गया था। इसी से हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह मूर्ति कितनी विशाल थी। साधारण तौर से भी एक ऊॅट पर कम से कम दस बारह मन तो बोझ अवश्य ही लादा जा सकता है। यदि प्रत्येक ऊंट पर दस मन पीतल भी लादा गया होगा तब भी उस मूर्ति का पूरा वजन 9000 (नौ हजार) मन होता है।

नौ हजार मन पीतल की उस विशाल मूर्ति का निर्माण कैसे हुआ था, इस बात को बडे-बडे वैज्ञानिक भी आसानी से नहीं समझ पाते। फिर मूर्ति तैयार हो जाने पर उसे मुहांने के परकोटों पर चढाने का काम इस बात ५ जानते हुए कि की तरह उस जमाने मे बोझ उठान की

एपोलो की रोड्स द्वीप स्थित पीतल की मूर्ति

पिछले पृष्ठों में हमने ग्रीक देश की कला मर्मज्ञता का उल्लेख किया है। जुपीटर की विश्वप्रसिद्ध मूर्ति इसी देश के महान कलाकार की अलौकिक कृति थी। अब हम इसी देश की एक दूसरी आश्चर्य जनक वस्तु का उल्लेख कर रहे हैं। भूमध्य सागर मे एक टापू है जिसका नाम 'रोड्स द्वीप' है। इस द्वीप के इतिहास से पता चलता है कि सर्वप्रथम यूनान के लोग ही यहाँ पर पहुँचे थे और अपने निवास के लिए मकान आदि बनवाये थे। वे वीर और साहसी थे और युद्ध विद्या मे पूर्ण निपुण थे। उन्होने अपनी शक्ति से रोड्स द्वीप के आस-पास के अनेक स्थानो पर अधिकार कर लिया था।

अत्यन्त प्राचीनकाल में रोड्स द्वीप के रहने वाले लोग भी सभ्य और सुसंस्कृत थे। रोड्स द्वीप की भूमि बडी उपजाऊ है और वहा खाने की प्राय सभी वस्तुये पैदा होती है। फल-फूल के लिये तो पृथ्वी का यह हिस्सा बहुत ही प्रसिद्ध है। कहते हैं कि जब यूनानी (ग्रीक) लोगो ने इस द्वीप मे प्रवेश किया तो उन्होने एक ऊचे पर्वत पर अपनी राजधानी बनाई। राजधानी को खूब सजाया गया। बड़े-बडे सुन्दर-सुन्दर महल और देवी-देवताओ के मन्दिर बनवाये गये। धीरे-धीरे रोड्स द्वीप के निवासियो की अपनी एक अलग जाति बन गई। समयान्तर मे इस द्वीप को भी कितने ही आक्रमणो का सामना करना पडा। सिकन्दर महान् ने अपनी सेना लेकर इस पर आक्रमण किया और इसे अपने राज्य की सीमा मे सम्मिलित कर लिया। पर यहा के निवासी स्वतन्त्रता प्रिय थे। जैसे ही सिकन्दर की मृत्यु का समाचार मिला, द्वीप के निवासियों ने सिकन्दर की सेना को वहाँ से मार भगाया और अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी सिकन्दर की सेना को मार भगाने के पश्चात ही रोड्स

द्वीप के निवासियो ने मिश्र के तत्कालीन सम्राट टेलिभीर के साथ मित्रता कर ली। यूनान के सम्राट एण्टिगोनस को रोड्स और मिश्र की यह मित्रता पसन्द नही आई। उसने मिश्र और रोड्स की मित्रता मे बाधा डालना शुरू कर दिया। जब इसमें उसे सफलता नही मिली तो उसने एक बहुत बडी सेना लेकर रोड्स द्वीप को चारो तरफ से घेर लिया। पर द्वीप के सैनिक ने अपनी वीरता का परिचय देते हुए एण्टीगोनस की सेना को पराजित कर दिया। अन्त मे एण्टिगोनस को सधि करनी पडी और उसके उपलक्ष्य मे द्वीप के निवासियो को बहुत सी वस्तुएं एव धन देना पडा। उन वस्तुओं को द्वीप वालों ने बेचा जिससे उन्हें अपार धन प्राप्त हुआ। कहते है उसी धन से रोड्स द्वीप के निवासियो ने ससार के महान आश्चर्य एपोलो की भव्य मूर्ति का निर्माण करवाया।

एपोलो ग्रीक निवासियो के बडे प्रिय देवता हैं। रोड्स वाले एपोलो देवता की पूजा बडी श्रृद्धा के साथ किया करते थे। आज भी वहाँ एपोलो की पूजा लोग बडी भक्ति और श्रद्धा के साथ किया करते है। कहते हैं कि एपोलो का जन्म मिश्र के देवराज जुपीटर और लाटोना से हुआ था। लोगों की धारणा है कि जुपीटर की आज्ञा से डिल्स नामक स्थान समुद्र के गर्भ से निकला था और उसी पर एपोलो और उनकी बहन डायना देवी पैदा हुए थे। उन दोनो के जन्म के समय अनेक देवी-देवता उन्हे देखने के लिए आए थे।

ग्रीक निवासियो में यह विश्वास है कि एपोलो शिल्प, संगीत, काव्य और औषध के देवता हैं। उन्होने ही समस्त विद्याओ की रचना की है। इस देश के पौराणिक ग्रन्थों में एपोलो देवता के अनेक चरित्रो का उल्लेख पाया जाता है। एपोलो के शरीर और सौन्दर्य का वर्णन भी बडे रोचक ढंग मे लिखा गया है। यह भी लिखा गया है कि वे सदा युवा रहते हैं। उनके चेहरे की बनावट बडी सन्दर है और उनके सिर पर लम्बे-लम्बे केशगुच्छ शोभायमान है। आज भी रोम के निवासियों मे एपोलो फैशन, का प्रचलन अत्यधिक है। अर्थात एपोलो की तरह सुन्दर और सजावट मे रहना रोम के निवासी पसन्द करते हैं।

हम जिस मूर्ति का उल्लेख कर रहे हैं वह इसी एपोलो देवता की मूर्ति थी। यह मूर्ति पीतल की बनी हुई थी। इसके निर्माण की कथा भी बडी रोचक है। कहते है कि इस मूर्ति के बनाने मे रोड्स द्वीप के निवासियो ने लगभग वह सारा ही धन खर्च कर दिया था जो उन्हे एण्टिगोनस से सधि मिला था उन दिनो लोगो मे मूर्तियो के प्रति बड़ा ही

आकर्षण था और लोग बडी श्रद्धा से उन्हें देखते थे तथा उनकी पूजा किय करते थे।

कहते है कि रोड्स द्वीप की राजधानी मे दो बन्दरगाह थे। इन्ही बन्दरगाहो से द्वीप के निवासी बाहरी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये हुए थे उनमे एक बन्दरगाह के मुहाने की चौडाई बीस फीट थी और दूसरी की चौडाई पचास फीट की थी। ऐपोलो की वह भव्य विशाल मूर्ति दोनो बन्दरगाहो के बीच में एक मुहाने पर प्रतिष्ठित की गई थी। बदरगाह मे जो भी जहाज आते-जाते उन्हे मूर्ति के अन्दर होकर जाना पडता था। पर इस बात का सही-सही निर्णय नहीं हो पाया है कि वह मूर्ति दोनो बदरगाहो के किस मुहाने पर स्थापित की गई थी। कुछ विद्वानो का कहना है कि जिस मुहाने की चौडाई पचास फीट थी उसी पर एपोलो की वह मूर्ति रखी गई थी और कुछ उसे बीस फीट चौडे मुहाने पर स्थापित होना बतलाते हैं। चाहे जो भी हो निर्द्वन्द्व रूप से वह मूर्ति विशाल थी और विश्व मे अपना एक अनोखा स्थान रखती थी।

सर्वप्रथम अन्वेषको ने जब इस मूर्ति को देखा था, तो उन्हे बडा आश्चर्य हुआ था। इतनी विशाल मूर्ति का निर्माण समुद्र के मुहाने पर करना कोई मामूली बात नही थी। उस मूर्ति का एक पैर मुहाने की एक दीवार पर था और दूसरा पैर दूसरी दीवार पर। इस प्रकार वह मूर्ति पूरे मुहाने की चौडाई पर छाई हुई अपनी दिव्यता प्रकट करती हुई खडी थी। मूर्ति की लम्बाई व चौडाई का विचार करते हुये हम उसकी एक कल्पना मात्र कर सकते है। कहते है कि उस मूर्ति की उंगलियाँ इतनी मोटी थीं कि कोई मनुष्य उसकी कोई उगली पकडना चाहता तो अपने दोनो हाथों को फैलाकर भी नही पकड सकता था।

मूर्ति की लम्बाई का पता चलते ही एक बात का निर्णय हम कर लेते है कि वह वास्तव मे पचास फीट चौडाई वाले मुहाने पर ही स्थापित थी। उसकी लम्बाई 125 फीट अर्थात लगभग 83 हाथ की बताई जाती है। इतनी विशाल मूर्ति का पचास फीट (लगभग 35 हाथ) के चौडे मुहाने पर आर-पार की दो पर्वतीय दीवारों पर अवस्थित करना कितना कठिन काम रहा होगा, इस बात की कल्पना हम सहज ही कर सकते हैं। उस पीतल की वेशाल मूर्ति के सम्बन्ध मे लोगो का कहना है कि भीतर से वह मूर्ति पोली थी और उस पर चढने के लिये भीतर ही भीतर सीढियाँ बनी हुई थीं। मूर्ति के सिर मे एक काफी बड़ा सा छिद्र था मूर्ति के भीतर ही भीतर सीढिय से

चढकर लोग ऊपर मूर्ति के सिर तक चले जाते थे और फिर छेद से सिर बाहर निकाल कर मिश्र देश को आने जाने वाले जहाजो को देखा करते थे।

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वानो का कथन है कि ईसा के जन्म से तीन सौ वर्ष पहले वह मूर्ति द्वीप के मुहाने पर खडी की गई थी। हजारों साधारण कलाकार एवं दक्ष कलाकारों ने मिलकर उस मूर्ति को तैयार किया था। उसे तैयार करने मे पूरे बारह साल लगे थे। पर दुर्भाग्य से वह मूर्ति केवल सत्तर वर्षो तक ही वहा खडी रह सकी। कहते हैं कि एक बार बहुत जोरों का भूकम्प आया। रोड्स द्वीप डगमगा उठा। उसी समय पृथ्वी के हिलने से वर्षो के श्रम का अद्भुत परिणाम पीतल की वह मूर्ति अपने स्थान से गिरकर नीचे आ पडी। रोड्स द्वीप के उस नगर के परकोटे भी धराशायी हो गये थे जहां वह मूर्ति स्थित थी। बाद में रोड्स द्वीप के निवासियों ने उस मूर्ति को पुन प्रतिस्थापित करने के अनेक प्रयत्न किये, पर उन्हें सफलता नही मिली। बहुत परिश्रम करके लोगों ने परकोटे (दीवार) की तो मरम्मत कर ली पर वह मूर्ति जहा पर वह गिरी थी वहीं पडी रही। उस काल से लेकर लगभग 865 वर्षो तक वह मूर्ति उसी अवस्था मे जमीन पर पडी रही। रोड्स द्वीप वालों ने उसे पुन. खडा करने के लिये हजारो बार प्रयत्न किया, पर अन्त तक सफलता उन्हें नहीं ही मिली।

समयान्तर में रोड्स द्वीप पर से ग्रीक जाति वालों का आधिपत्य मिटता गया और सरासिन जाति के लोगों ने उस द्वीप पर अधिकार कर लिया। जब रोड्स पर सरासिन जाति के लोगों का अधिकार हुआ तब भी एपोलो देव की वह विशाल मूर्ति वैसे ही जमींन पर पडी हुई थी। इसी जाति के लोगो ने संसार प्रसिद्ध उस मूर्ति को एक यहूदी व्यापारी के हाथों बेच दिया। उसके बेचने से द्वीप वालों को बहुत सी सम्पदा मिली। कहते है कि वह यहूदी व्यापारी उस मूर्ति के पीतल को 900 (नौ सौ) ऊंटो पर लाद कर ले गया था। इसी से हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह मूर्ति कितनी विशाल थी। साधारण तौर से भी एक ऊँट पर कम से कम दस बारह मन तो बोझ अवश्य ही लादा जा सकता है। यदि प्रत्येक ऊंट पर दस मन पीतल भी लादा गया होगा तब भी उस मूर्ति का पूरा वजन 9000 (नौ हजार) मन होता है।

नौ हजार मन पीतल की उस विशाल मूर्ति का निर्माण कैसे हुआ था, इस बात को बडे-बड़े वैज्ञानिक भी आसानी से नहीं समझ पाते। फिर मूर्ति तैयार हो जाने पर उसे मुहांने के परकोटों पर चढाने का काम इस बात ५` जानते हुए कि की तरह उस जमाने मे बोझ उठान की

किसी मशीन या क्रेन का संभवत आविष्कार नहीं हुआ था, तो एक दम ही आश्चर्यजनक मालूम पड़ता है।

विद्वानों का कहना है कि कथित एपोलो की मूर्ति के अतिरिक्त उस द्वीप मे लगभग तीन हजार और भी पीतल की बडी-बड़ी मूर्तियाँ बनी हुई थीं। उनमे से एक सौ मूर्तियाँ तो ऐसी थीं कि यदि उनमें से एक भी मूर्ति किसी दूसरी जगह होती तो उसी एक मूर्ति के कारण उसका नाम संसार मे अमर हो जाता। उस जमाने में रोड्स द्वीप में देवताओं के बडे सुन्दर अनेक मन्दिर भी थे। द्वीप के निवासी धार्मिक विचार के और कला प्रेमी थे। लोगो ने अपने आवास के लिये भी एक से एक सुन्दर आलीशान महल बनवाये थे। जो मूर्तियाँ वहाँ बनी थी, उनकी लोग बड़ी श्रद्धा के साथ पूजा करते थे।

बाद की खोजो में उस द्वीप में कई ऐसी चीजें मिली हैं, जिनसे वहाँ के प्राचीन निवासियों, उनके आचार विचार और रहन-सहन आदि का पता चलता है। यहाँ के प्राचीन इतिहास में यहाँ की राजधानी के नगर का वर्णन बडा ही रोचक है। नगर की सड़के साफ सुथरी थीं और सडकों के दोनों तरफ सुन्दर वृक्ष लगाये गये थे जिसकी वजह से सडकों की शोभा बहुत ही बढ जाती थी। उस काल में चलने वाले सिक्के भी मिले है, जिन पर सूर्य भगवान की मूर्ति खुदी हुई है और एक तरफ एक फूल बना हुआ है। इससे प्रमाणित होता है कि पुराने काल में इस देश के निवासी सूर्य की पूजा किया करते थे। गुलाव का फूल सिक्के की दूसरी तरफ बनाया जाता था। वह सभवतः उस देश के सुख-शाति का प्रतीक था। ग्रीक भाषा में रोड्स गुलाब के फूल को कहते हैं। सभावत- इसीलिये उस द्वीप का नाम भी रोड्स द्वीप (अर्थात गुलाबों का टापू) पडा।

धीरे-धीरे इस द्वीप के आदि निवासियो का पतन होता गया। ग्रीक निवासियों से सरासिन जाति के लोगों ने इस द्वीप को ले लिया। आठवीं शताब्दी मे फिर ग्रीक जाति वालो का उस पर अधिकार हुआ। पर कई वर्षो बाद टर्की ने इस पर आक्रमण करके इस द्वीप पर अपना आधिपत्य जमाया और आज तो उस द्वीप से प्राचीन समस्त स्मृतियाँ लुप्त हो गई है। उस काल का कोई भी अवशेष अब वहां देखने को नही मिलता है।

जिस ऐपोलो देवता की मूर्ति का हाल हमने ऊपर लिखा है, उनकी पूजा ग्रीक मे सर्वत्र हुआ करती थी। अनेक नगरो में एपोलो के तरह तरह के सुन्दर मन्दिर बने हुए थे और लोग इन्हीं की पूजा किया करते

थे। कुछ लोग सूर्य और एपोलो को एक ही देवता मानते है। पर वास्तव मे उस जमाने में भी ग्रीक निवासी सूर्य और एपोलो की अलग-अलग पूजा किया करते थे।

ग्रीक के विश्व विख्यात आदि कवि होमर ने एपोलो देवता की प्रशसा मे बहुत से गीतों की रचना की है। उन कविताओं को पढने से हमे पता चलता है कि उन दिनों ग्रीकों मे एपोलो देवता को बडी महिमा समझी जाती थी। होमर के गीतो से पता चलता है कि लोग अपने भविष्य की जानकारी प्राप्त करने के लिये एपोलो के मन्दिर मे जाया करते थे। इस कार्य के लिये त्रैटिप द्वारा बनाया गया डेलिर का मन्दिर बहुत अधिक प्रसिद्ध था। वहॉ पर पीथिया नाम की एक लडकी रहती थी वही भविष्य जानने की उत्कंठा रखने वालों का एपोलो की तरफ से उत्तर देती थी। मन्दिर के मध्य भाग मे एक गुफा थी। उस गुफा में से बराबर एक प्रकार की गधक मिश्रित भाप निकला करती थी उसी गुफा के द्वार पर पीथिया एक आसन पर बैठी रहती थी। वह बडे आचार-विचार और नियम-संयम से रहा करती थी। वह कुमारी थी। वर्ष मे एक बार ही बसन्त ऋतु के आगमन पर प्रश्न पूछने वालों को पीथिया उत्तर दिया करती थी। जो लोग अपने लिये कुछ पूछने के लिये जाते थे, उन्हे पूजा के रूप में बहुत सी चीजें भेंट चढाने के लिये ले जाना पडता था। परिणामत· एपोलो का वह मन्दिर धन-धान्य से परिपूर्ण रहता था।

इतिहासकार बतलाते है कि उन दिनो ग्रीक निवासियों में बलि चढाने की प्रथा भी थी। ग्रीस और रोम देश के निवासियों नें बलिदान की प्रथा थी। पर सभी में बलि के प्रति एक सा विश्वास नही था। कुछ ऐसे भी लोग थे जो बलिदान की प्रथा के विरोधी थे। पर एपोलो देवता सब लोगों के सामान्य रूप से आराध्य देव थे। उनकी भविष्यवाणी के प्रति किसी में अविश्वास प्रकट करने की हिम्मत नहीं होती थी। कहते हैं कि जिस समय पीथिया लोगो के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देती थी उस समय एपोलो देवता उसके ऊपर आ बैठते थे। यह बात नही थी कि केवल साधारण जनता को ही एपोलो देवता की भविष्यवाणी में विश्वास था। बडे-बडे योद्धा और विद्वान भी मन्दिर मे अपने मनोवाछित प्रश्नों का उत्तर जानने के लिये जाया करते थे। कहते कि सिकन्दर महान ने फारस देश पर आक्रमण करने के लिये युद्ध यात्रा करने से पूर्व एपोलो देवता की वाणी को जानना चाहा था।

रोड्स द्वीप के भिन्न भिन्न नगरों से प्राप्त पौराणिक कला की अनेक स्मृतिया आज ब्रिटिश म्यूजियम की शोभा बढा रही है पर जिस महान मूर्ति

किसी मशीन या क्रेन का संभवत आविष्कार नहीं हुआ था, तो एक दम ही आश्चर्यजनक मालूम पड़ता है।

विद्वानों का कहना है कि कथित एपोलो की मूर्ति के अतिरिक्त उस द्वीप मे लगभग तीन हजार और भी पीतल की बडी-बडी मूर्तियाँ बनी हुई थी। उनमे से एक सौ मूर्तियाँ तो ऐसी थीं कि यदि उनमें से एक भी मूर्ति किसी दूसरी जगह होती तो उसी एक मूर्ति के कारण उसका नाम संसार मे अमर हो जाता। उस जमाने में रोड्स द्वीप में देवताओं के बडे सुन्दर अनेक मन्दिर भी थे। द्वीप के निवासी धार्मिक विचार के और कला प्रेमी थे। लोगो ने अपने आवास के लिये भी एक से एक सुन्दर आलीशान महल बनवाये थे। जो मूर्तियाँ वहाँ बनी थी, उनकी लोग बडी श्रद्धा के साथ पूजा करते थे।

बाद की खोजों में उस द्वीप मे कई ऐसी चीजें मिली हैं, जिनसे वहाँ के प्राचीन निवासियों, उनके आचार विचार और रहन-सहन आदि का पता चलता है। यहाँ के प्राचीन इतिहास में यहाँ की राजधानी के नगर का वर्णन बडा ही रोचक है। नगर की सडकें साफ सुथरी थीं और सडकों के दोनों तरफ सुन्दर वृक्ष लगाये गये थे जिसकी वजह से सडकों की शोभा बहुत ही बढ जाती थी। उस काल मे चलने वाले सिक्के भी मिले है, जिन पर सूर्य भगवान की मूर्ति खुदी हुई है और एक तरफ एक फूल बना हुआ है। इससे प्रमाणित होता है कि पुराने काल में इस देश के निवासी सूर्य की पूजा किया करते थे। गुलाब का फूल सिक्के की दूसरी तरफ बनाया जाता था। वह सभवत उस देश के सुख-शाति का प्रतीक था। ग्रीक भाषा में रोड्स गुलाब के फूल को कहते हैं। संभावत इसीलिये उस द्वीप का नाम भी रोड्स द्वीप (अर्थात गुलाबों का टापू) पडा।

धीरे-धीरे इस द्वीप के आदि निवासियों का पतन होता गया। ग्रीक निवासियों से सरासिन जाति के लोगो ने इस द्वीप को ले लिया। आठवीं शताब्दी मे फिर ग्रीक जाति वालों का उस पर अधिकार हुआ। पर कई वर्षो वाद टर्की ने इस पर आक्रमण करके इस द्वीप पर अपना आधिपत्य जमाया और आज तो उस द्वीप से प्राचीन समस्त स्मृतियाँ लुप्त हो गई है। उस काल का कोई भी अवशेष अव वहां देखने को नहीं मिलता है।

जिस ऐपोलो देवता की मूर्ति का हाल हमने ऊपर लिखा है, उनकी पूजा ग्रीक में सर्वत्र हुआ करती थी ' अनेक नगरो में एपोलो के तरह-तरह के सुन्दर मन्दिर बने हुए थे और लोग इन्हीं की पूजा किया करते

की चर्चा हमने की है उसका कोई भी अवशेष अब नहीं रहा है। पौराणिक काल मे जिन महान अन्वेषको ने उन्हें देखा था, केवल उनके लेख ही हमे पढने को मिलते है। पर उन्ही से हम रोड्स की तत्कालीन विकसित कला की कल्पना कर सकते है और हमे आश्चर्य में रह जाना पड़ता है। कहते हैं कि ममेनोनियम नामक नगर मे एक किले के खण्डहर के नीचे एक विशालमूर्ति मिली थी। मूर्ति महल के गिरने से बीचो-बीच टूट गई थी और कमर से उसके दो भाग हो गये थे। उस मूर्ति के सम्बन्ध में कहते हैं कि वह चौड़ाई में चालीस हाथ के लगभग थी। अभी भी ब्रिटिश म्यूजियम में उस मूर्ति का आगे वाला भाग सुरक्षित रखा हुआ है।

यहाँ कान्सटेन्टिनोपल नगर के उस पत्थर के स्तम्भ का उल्लेख भी कर देना उचित होगा। क्योकि उससे एपोलो की उस मूर्ति की विशालता की एक झलक मिलती है यह स्तम्भ पत्थर का बना हुआ है। इसकी बनावट इजिप्ट देश के पिरामिड की तरह है। उस पर ताम्बे का एक पत्र जडा हुआ है जिस पर लिखा हुआ है–

"यह चौकोर अत्यन्त ऊँचा स्तम्भ अनेकों समय पर अनेक बार टूट चुका है। पर अब इसे रोमेन्स के पुत्र कैन्सटासियस ने पुनः मरम्मत करवा कर पहले जितना ऊंचा और मजबूत करवा दिया है। रोड्स द्वीप की एपोलो की पीतल की मूर्ति सचमुच बडी अद्भुत है। परन्तु यह स्तम्भ इस स्थान की अद्भुत वस्तु है।"

स्तम्भ पर लिखे इस लेख से भी हमें एपोलो की विशाल मूर्ति का पता चलता है। पर अब उस विशालता की केवल यादगार शेष रह गई है। अब न वह द्वीप है, न वे जातियाँ जिन्होने उस मूर्ति को बनवाया था। और न वह यहूदी सौदागर जो उस मूर्ति को अपने नौ सो ऊँटों पर लाद कर अपने देश को ले गया था। सब कुछ मिट गया है पर इतिहास के पन्ने उसकी अमरता की गाथा आज भी गा रहे हैं।

❑❑❑

बेबीलोन का हवाई उपवन
अथवा
बेबीलोन का लटकता हुआ उपवन

वेबीलोन को यदि हम स्वर्ग नगरी की समता मे रखें तो यह कोई अत्युक्ति नहीं होगी। एक जमाना था कि कृत्रिम एवं प्राकृतिक सौन्दर्यो की इस नगरी में भरमार थी। पर जैसे परमात्मा को अपनी कृति के सम्मुख उतने साज सौन्दर्य में कोई मानवी कृति पसन्द नहीं, इसीलिये इस स्वर्ग नगरी वेबीलोन के कृत्रिम अद्भुत सौन्दर्य अब केवल इतिहास के पृष्ठो ही में समाहित रह गये हैं। बेबीलोन आज भी है, वहाँ के पर्वत, नदी और झीलें आज भी हैं पर वहां के लोगों ने उस भूमि पर जिन अद्भुत विश्व विमोहिनी सौन्दर्यो की रचना की थी, उनके चिन्ह अब वर्तमान में नहीं हैं। समय के चक्र मे घुलते-पिसते वे सब खत्म हो गये।

बगदाद से दक्षिण की तरफ पचास मील की दूरी पर यूफ्रतीज नदी के तट पर वेबीलोन नगर बसा हुआ है। विद्वानों में इस बात को लेकर तगडा मतभेद है कि इस सुन्दर नगर को कब ओर किसने बसाया। इतिहास के पृष्ठों मे प्राचीन काल के एक बादशाह नेबुकनेजर के राज्यकाल के उल्लेख के मध्य इस बात का पता चलता है कि बेबीलोन नगर की उस समय काफी उन्नति थी। उस समय यह नगर सब प्रकार से सुखी और सम्पन्न था। स्पष्ट है कि अब से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व वेबीलोन नगर की काफी उन्नति हुई थी। पौराणिक बातों के खोज करने वाले विद्वानों का कहना है कि इस बात का कोई प्रमाण नही मिलता है कि इस नगर की नींव कब और किसने डाली थी

प्रसिद्ध इतिहास लेखक हेरोडोट्स का जीवन लिखने वाले कुछ विद्वानो ने तो यहा तक लिख दिया है कि ईस्वी सन् से लगभग 445 वर्ष पूर्व जिस इतिहास की रचना हेरोडोट्स ने की थी, उसमे भी वेबीलोन नगर के बसाये जाने का हाल नहीं मिलता है। पर वास्तव में ऐसी बात नही है। अथवा इससे इस तर्क पर पहुंचना कि हेरोडोट्स के काल तक वेबीलोन नगर के बसाये जाने का पता ने चला था भ्रांति-मूलक बात है। वास्तव में हेरोडोट्स के इतिहास मे बेबीलोन की काफी चर्चा मिलती है और उन्हे पढकर हम एक निष्कर्ष पर पहॅुच ही जाते हैं। वेबीलोन नगर की जिन अद्भुत मानव-कृतियो का जिक्र हम करने जा रहे है। वह वास्तव में हेरोडोटस का आखो देखा वर्णन है। वैसे तो प्राचीनकाल के कुछ अन्वेषकों द्वारा अपने भ्रमण के लेखो में भी उसका हाल मिलता है, पर हेरोडोट्स के इतिहास को ही हम प्रामाणिकता का आधार मानते हैं।

वेबीलोन नगर के जिस हवाई उपवन का उल्लेख हम करते रहे है, वह ससार मे अत्यधिक प्रसिद्ध एव विश्व के महान् आश्चर्यो मे से एक महान् आश्चर्य है। वैसे तो यह सारा का सारा नगर ही अलकापुरी के सौन्दर्य की जैसी सानी रखता है, पर वह उद्यान अपनी बनावट की अद्भूत कला और सजावट आदि के लिये ससार में अकेला ही है। वह उद्यान बेबीलोन की तत्कालीन महारानी का क्रीडा स्थल था। कहते है कि मेहराबी छतो पर एक बहुत ही आलीशान महल बनवाया गया था। उस महल पर और भी कई एक महल बनाये गये थे। उनमें से जव सबसे ऊॅचे वाला मकान नगर के परकोटो की ऊचाई के बराबर पहुंचा तव उस पर एक अत्यन्त ही सुन्दर उपवन (बाग) बनाया गया। यही वह उपवन था जो संसार के महान् आश्चर्यो मे विशिष्ट स्थान रखता है। उस उपवन की पूरी जानकारी प्राप्त करने से पूर्व यह आवश्यक होगा कि हम बेबीलोन के तत्कालीन इतिहास और नगर की बनावट के सम्बन्ध मे भी कुछ जानकारी प्राप्त कर लें।

हमने पहले ही कहा है कि इस नगर को स्वर्ग नगर, अलकापुरीएव अमरावती कहने में कोई अतिशयोक्ति नही होगी। इस नगर की बनावट इतनी सुन्दर थी, और आज भी उस सौन्दर्य के ऐसे-ऐसे अवशेष विद्यमान है, कि उन्हे देखते ही बनता है। नगर चौकोर बसाया गया है। चारों तरफ से इसका प्रसार लगभग बारह मील का है। इस प्रकार यदि कोई नगर की परिक्रमा करना चाहे तो उसे सामान्यत पचास मील का चक्कर काटना पडता है। चारो तरफ नहर खोदी गई है जिससे बाहरी से नगर की सुरक्षा हो

सके। कहते हैं कि नहर की खुदाई मे जो मिट्टी निकली थी उस मिट्टी की ईंटे बनाई गई और उन ईंटो से शहर के चारो तरफ परकोटे खींचे गये। परकोटे की दीवार लगभग दो सौ हाथ ऊँची और पचास हाथ चौडी बनाई गई। ईंटो की जुडाई में जिस मसाले का उपयोग किया गया है, वह एक प्रकार का लाल रग का मसाला था।नगर के चारों तरफ जो नहर खोदी गई है उसकी गहराई का कोई निश्चित माप का तो हमे पता नही है, पर जिसकी मिट्टी से दो सौ हाथ ऊंची और पचास हाथ चौड़ी दीवारे बनी है, उसकी गहराई कितनी होगी इसका अनुमान हम कर सकते है। निश्चित रूप से वह नहर बहुत ही गहरी होगी।

बेबीलोन की प्रसिद्ध नदी, युफ्रतीज, जिसके तट पर यह नगर बसा हुआ है, नगर के मध्य मे से होकर बहती है। इसलिये नदी की वजह से यह नगर दो भागों में बंट गया है। नगर की रक्षा का बडा ही मजबूती से प्रबन्ध किया गया है। चारों तरफ की मजबूत दीवार और गहरी नहर के होने के कारण कोई भी शत्रु चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, नगर पर चढाई करने की सहज ही हिम्मत नही कर सकता था। नगर मे प्रवेश करने से पहले शत्रु को नहर, तब उसके बाद परकोटे की मजबूत दीवारो को पार करना होता है। परकोटों पर चारों ओर शक्तिशाली बुर्ज बने हुए हैं। परकोटे की मुंडेर इतनी चौड़ी थी कि उन पर एक साथ ही चार गाडियाँ दौड सकती थीं। चारदीवारी में चार लम्बे चौड़े प्रवेश द्वार थे और उनमें पीतल के अत्यन्त ही मजबूत फाटक लगे हुए थे। युफ्रतीज नदी पर कई बांध बाधे गए थे। पीतल के मजबूत फाटकों के अतिरिक्त कई एक पीतल के पल्लों की खिड़किया भी थी।

युफ्रतीज नदी पर आज भी एक ऐसा अद्भुत पुल बना हुआ है, जिसे देखकर बडे-बडे इन्जीनियरों का भी सिर चकराये बिना नहीं रह सकता है। कहते हैं इस नदी की सतह में बहुत अधिक बालू है। इसलिये इसमें कोई स्थाई एव मजबूत पुल बनाना सर्वथा असम्भ है। पर बडे-बडे वैज्ञानिकों की इस धारणा के बावजूद इस नदी पर जो पौराणिक समय का बना हुआ पुल है वह इतनी मजबूती और इस खूबी से बना हुआ है कि वह आज भी वैसे का वैसे ही खडा है। बहुत दूर-दूर के कारीगर जब उस पुल को देखते हैं तो आश्चर्य में पडे बिना नहीं रहते।

कहते हैं कि परकोटे में जो प्रवेश द्वार बने हुए हैं वह एक दूसरे से जोड़े गय है एक दरवाजे स दूसरे दरवाजे तक जाने के लिय पुल की तरह

ही ऊंचे-ऊचे चबूतरे बने हुए हैं। इन चबूतरों में से प्रत्येक की ऊचाई परकोटे की दीवार से दस फीट की बताई जाती है। अन्य भी कई चबूतरे जहाॅ तहाॅ बने हुए थे। कहते हैं कि कुल मिलाकर चबूतरो की संख्या लगभग तीन सौ की थे। इस प्रकार चारों तरफ से हर भांति नगर की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया गया था। किसी भी शत्रु का चाहे वह कितना ही प्रवल एवं सैन्यबल रखता हो, नगर में घुस जाना एक प्रकार से असम्भव ही था। नगर के भीतर की सड़के भी बडी सुन्दर और साफ सुथरी तथा चौडी वनी हुई थीं। कोई-कोई सड़क की लम्बाई पूरे नगर में फैली हुई थी। इसी प्रकार कोई-कोई सडक 150 फीट चौडाई की भी थी। सडको के दोनों तरफ पीतल के सुन्दर कटहरे बनाये गये थे जिनके कारण सडको की शोभा बहुत ही वढ जाती थी। सड़को के पास कही-कहीं सुन्दर मनोरम उपवन भी वने हुए थे। कुल मिलाकर यह नगर अत्यन्त ही सुन्दर था।

इस नगर का उपर्युक्त वर्णन कल्पित नही, वरन् हिरोडोट्स द्वारा लिखित इतिहास मे इस नगर का ऐसा ही वर्णन आया है। यहाॅ के लोगों के सम्बन्ध में हिरोडोट्स ने लिखा है कि लोग धार्मिक विचारो के थे। देवी-देवताओं की पूजा करते थे। वहाॅ के निवासियों के प्रसिद्ध देवता 'बलूस' के प्रति लोगों मे बडी श्रद्धा थी। बलूस देवता का एक मन्दिर भी नगर में बना हुआ था। यह मन्दिर बड़ा ही सुन्दर एवं अद्‌भुत बना हुआ था। मन्दिर के चारों तरफ चारदीवारी खिंची हुई थी और मन्दिर का घेरा हर तरफ से लगभग साढे सात सौ हाथ का था। चारदीवारी के मध्य में बलूस देवता का विशाल भव्य मंदिर बना हुआ था। मन्दिर के वाहरी भाग से ऊपर तक जाने के लिए सीढियाॅ बनी हुई थीं। मन्दिर की ऊॅचाई इतनी अधिक थी कि सीढ़ियों से ऊपर चढते समय दम लेने के लिये चढ़ने वाले को कई स्थानों पर रुकना पडता था। इसके लिये बीच-बीच में रुकने के स्थान भी वने हुए थे। विश्राम के जो स्थान ऊपर बने हुए थे वे भी देखने में अनूठे ही थे। वे दालान की तरह थे और उनकी सजावट भी बडी अच्छी थी। वहाॅ लोगों के बैठने के लिये मेज, कुर्सियाॅ आदि वनी हुई थी। इस मदिर के सवसे ऊपरी भाग में वलूस देवता की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। जिस स्थान पर वह मूर्ति रखी गई थी, वह स्थान सजावट मे अद्वितीय था। वह मूर्ति भी बड़ी विशाल और आकर्षक थी। मूर्ति के अगल-वगल में एक लम्बा चौडा रिक्त स्थान था। वहीं पर स्वर्ण का वना हुआ एक सुन्दर पलंग बिछा हुआ था और उसके समीप ही सोने का बना हुआ एक अत्यन्त ही सुन्दर सिंहासन भी था ' उस सिहासन के आस पास सोने की बनी हुई अनेक कुसिया रखी हुई थीं

लोगों का कहना है कि एक बार सोने की बनी उन मूर्तियों के मूल्य का अन्दाजा लगाया गया था, तो पता चला कि उन मूर्तियों में लगे सोने का मूल्य ही कम से कम तीस करोड रुपये का होगा। कहते हैं कि मन्दिर की ऊँचाई लगभग चार सौ हाथ की थी और उसके नीचे का घेरा भी चार सै हाथ का ही था। मन्दिर के सबसे ऊपरी हिस्से मे आकाश के नक्षत्रों की जानकारी प्राप्त करने के लिये कई दूर्बीनें और कई यंत्र लगे हुए थे। बादशाह नेबुकनेजर के समय तक, कहते है कि मन्दिर के हर हिस्से में देवताओं की पूजा हुआ करती थी।

ईसाईयो के धर्म ग्रथ बाइबिल में महाराज नेबुकनेजर का उल्लेख भी कई स्थानों पर मिलता है। एक स्थान पर लिखा हुआ है कि नेबुकनेजर की सोने की कई मूर्तियां थी। उनमे एक मूर्ति ऐसी थी जिसकी ऊँचाई साठ हाथ की थी। नेबुकनेजर भी कला प्रेमी और देवताओं की आराधना करने वाला था। उसने मंदिर के आस-पास और भी कितने ही सुन्दर भव्य महल बनवा दिये थे। इस प्रकार इन सब मकानों के साथ मन्दिर का प्रसार लगभग एक मील में हो गया था। उन घरो में भी पीतल के मजबूत फाटक बने हुए थे और उनके चारों तरफ परकोटे खींचे गये थे।

पर समयांतर मे यह मन्दिर भी विनाश के कराल-गाल में समा गया है। जराक्सिस नामक बादशाह के समय तक यह मन्दिर काफी अच्छी हालत में था और लोगों की अपार श्रृद्धा का पूजित केन्द्र था। पर जब जराक्सिस ग्रीस के युद्ध से लौटा तब उसने मन्दिर को खुदवा कर उसका सारा धन निकाल लिया। यही नहीं, उसने सोने की सभी मूर्तियो को गलवा कर सिक्के ढलवा दिए। उन्हीं मूर्तियो मे कहते हैं, एक चालीस हाथ ऊँची मूर्ति भी थी। पर बाइबिल मे वर्णित नेबुकनेजर की वह साठ हाथ ऊँचाई वाली मूर्ति का कोई पता नहीं चला। पर अन्य किसी इतिहासकार के इतिहास वर्णन में भी उस कथित मूर्ति का पता नहीं चलता है। जो सारी मूर्तियां उस मन्दिर से निकाली गई थीं उनका सोना तौलने पर लगभग सात सौ मन था।

केवल उस मन्दिर को ही नहीं, कहते है कि जराक्सिस ने पूरे बेबीलोन नगर को जी भर कर लूटा-खसोटा था। उसने कितनी ही इमारतो को खुदवा कर धराशायी कर दिया था और वहां से प्राप्त धन राशि से अपना खजाना भरा था। भारत पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् सिकन्दर महान् जब वापस लौटा तो वह इस नगर का कायापलट करवाना चाहता था। इस काम के लिये उसने दस हजार मजदूरो को और टूटी फूटी इमारतो और दीवारो

ही ऊंचे-ऊंचे चबूतरे बने हुए हैं। इन चबूतरो में से प्रत्येक की ऊंचाई परकोटे की दीवार से दस फीट की बताई जाती है। अन्य भी कई चबूतरे जहाँ तहाँ बने हुए थे। कहते है कि कुल मिलाकर चबूतरों की संख्या लगभग तीन सौ की थे। इस प्रकार चारो तरफ से हर भाति नगर की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया गया था। किसी भी शत्रु का चाहे वह कितना ही प्रबल एवं सैन्यबल रखता हो, नगर में घुस जाना एक प्रकार से असम्भव ही था। नगर के भीतर की सड़कें भी बड़ी सुन्दर और साफ सुथरी तथा चौडी बनी हुई थीं। कोई-कोई सड़क की लम्बाई पूरे नगर मे फैली हुई थी। इसी प्रकार कोई-कोई सडक 150 फीट चौडाई की भी थी। सड़कों के दोनो तरफ पीतल के सुन्दर कटहरे बनाये गये थे जिनके कारण सडको की शोभा बहुत ही बढ़ जाती थी। सडको के पास कही-कहीं सुन्दर मनोरम उपवन भी बने हुए थे। कुल मिलाकर यह नगर अत्यन्त ही सुन्दर था।

इस नगर का उपर्युक्त वर्णन कल्पित नही, वरन् हिरोडोट्स द्वारा लिखित इतिहास मे इस नगर का ऐसा ही वर्णन आया है। यहाँ के लोगो के सम्बन्ध में हिरोडोट्स ने लिखा है कि लोग धार्मिक विचारों के थे। देवी-देवताओं की पूजा करते थे। वहाँ के निवासियों के प्रसिद्ध देवता 'बलूस' के प्रति लोगों मे बडी श्रद्धा थी। बलूस देवता का एक मन्दिर भी नगर मे बना हुआ था। यह मन्दिर बड़ा ही सुन्दर एवं अद्भुत बना हुआ था। मन्दिर के चारों तरफ चारदीवारी खिंची हुई थी और मन्दिर का घेरा हर तरफ से लगभग साढे सात सौ हाथ का था। चारदीवारी के मध्य में बलूस देवता का विशाल भव्य मंदिर बना हुआ था। मन्दिर के बाहरी भाग से ऊपर तक जाने के लिए सीढियाँ बनी हुई थीं। मन्दिर की ऊँचाई इतनी अधिक थी कि सीढियों से ऊपर चढते समय दम लेने के लिये चढ़ने वाले को कई स्थानों पर रुकना पडता था। इसके लिये बीच-बीच में रुकने के स्थान भी बने हुए थे। विश्राम के जो स्थान ऊपर बने हुए थे वे भी देखने में अनूठे ही थे। वे दालान की तरह थे और उनकी सजावट भी वडी अच्छी थीं। वहाँ लोगो के बैठने के लिये मेज, कुर्सियाँ आदि बनी हुई थी। इस मदिर के सबसे ऊपरी भाग में बलूस देवता की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। जिस स्थान पर वह मूर्ति रखी गई थी, वह स्थान सजावट मे अद्वितीय था। वह मूर्ति भी बडी विशाल और आकर्षक थी। मूर्ति के अगल-बगल में एक लम्बा चौडा रिक्त स्थान था। वहो पर स्वर्ण का बना हुआ एक सुन्दर पलंग बिछा हुआ था और उसके समीप ही सोने का बना हुआ एक अत्यन्त ही सुन्दर सिहासन भी था' उस सिहासन के आस पास सोने की बनी हुई अनेक कुसिया रखी हुई थीं

लोगों का कहना है कि एक बार सोने की बनी उन मूर्तियों के मूल्य का अन्दाजा लगाया गया था, तो पता चला कि उन मूर्तियो में लगे सोने का मूल्य ही कम से कम तीस करोड रुपये का होगा। कहते हैं कि मन्दिर की ऊँचाई लगभग चार सौ हाथ की थी और उसके नीचे का घेरा भी चार सौ हाथ का ही था। मन्दिर के सबसे ऊपरी हिस्से में आकाश के नक्षत्रों की जानकारी प्राप्त करने के लिये कई दूर्बीने और कई यंत्र लगे हुए थे। बादशाह नेबुकनेजर के समय तक, कहते हैं कि मन्दिर के हर हिस्से मे देवताओ की पूजा हुआ करती थी।

ईसाईयों के धर्म ग्रथ बाइबिल में महाराज नेबुकनेजर का उल्लेख भी कई स्थानो पर मिलता है। एक स्थान पर लिखा हुआ है कि नेबुकनेजर की सोने की कई मूर्तियां थीं। उनमें एक मूर्ति ऐसी थी जिसकी ऊँचाई साठ हाथ की थी। नेबुकनेजर भी कला प्रेमी और देवताओ की आराधना करने वाला था। उसने मदिर के आस-पास और भी कितने ही सुन्दर भव्य महल बनवा दिये थे। इस प्रकार इन सब मकानों के साथ मन्दिर का प्रसार लगभग एक मील मे हो गया था। उन घरों में भी पीतल के मजबूत फाटक बने हुए थे और उनके चारों तरफ परकोटे खींचे गये थे।

पर समयांतर में यह मन्दिर भी विनाश के कराल-गाल में समा गया है। जराक्सिस नामक बादशाह के समय तक यह मन्दिर काफी अच्छी हालत मे था और लोगो की अपार श्रृद्धा का पूजित केन्द्र था। पर जब जराक्सिस ग्रीस के युद्ध से लौटा तब उसने मन्दिर को खुदवा कर उसका सारा धन निकाल लिया। यहीं नहीं, उसने सोने की सभी मूर्तियों को गलवा कर सिक्के ढलवा दिए। उन्हीं मूर्तियों में कहते हैं, एक चालीस हाथ ऊँची मूर्ति भी थी। पर बाइबिल में वर्णित नेबुकनेजर की वह साठ हाथ ऊँचाई वाली मूर्ति का कोई पता नहीं चला। पर अन्य किसी इतिहासकार के इतिहास वर्णन में भी उस कथित मूर्ति का पता नहीं चलता है। जो सारी मूर्तियां उस मन्दिर से निकाली गई थी उनका सोना तौलने पर लगभग सात सौ मन था।

केवल उस मन्दिर को ही नहीं, कहते है कि जराक्सिस ने पूरे बेबीलोन नगर को जी भर कर लूटा-खसोटा था। उसने कितनी ही इमारतो को खुदवा कर धराशायी कर दिया था और वहां से प्राप्त धन राशि से अपना खजाना भरा था। भारत पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् सिकन्दर महान् जब वापस लौटा तो वह इस नगर का कायापलट करवाना चाहता था। इस काम के लिये उसने दस हजार मजदूरो को और टूटी फूटी इमारतो और दीवारो

की मरम्मत करवानी शुरू की। परन्तु दुर्भाग्य से काम शुरू करवाने के दो वर्ष बाद ही उसकी मृत्यु हो गई और बेबीलोन नगर उजाड का उजाड ही रह गया।

बेलूस देवता के जिस मन्दिर का उल्लेख हमने ऊपर किया है, उसके समीप ही बेबीलोन के बादशाह की पुरानी इमारत भी थी। उसका घेरा पूरे चार मीलो मे था। उस पुराने राजमहल के ठीक सामने युफ्रतीज नदी के उस पार नेबुकनेजर ने एक अलीशान नया राजभवन बनवाया था। कहते हैं, म्हाराज नेबुकनेजर के नए राजभवन के घेरों में कई आश्चर्य चकित कर देने योग्य अन्य इमारते भी बनाई गई थी। सबसे आश्चर्य जनक वस्तु वह उद्यान था। कहते है कि महाराज नेबुकनेजर ने जितनी भी चीजें बनाई थी, उनमें तालाब और नहरे अत्यधिक सुन्दर एवं आकर्षक बनाई गई थी।

बहुत काल से लगातार युफ्रतीज नदी की बाढ से बेबीलोन नगर के निवासियों को अनेक दिक्कतों से गुजरना पडता था। बराबर इस नदी मे बाढ आती जाती रहती थी। गर्मी के दिनों में जब अर्मेनिया पर्वत की बर्फ पिघलती थी तो उसका पानी युफ्रतीज नदी मे आता था जिसके कारण नदी में तूफान आना शुरू हो जाता था। इस बाढ मेंनगर के अधिकतर भाग डूब जाते थे और नगरवासियो को बहुत हानि होती थी। नेबुकनेजर के गद्दी पर बैठने के पूर्व भी इस बाढ को रोकने का बहुत प्रयत्न किया गया था, पर सफलता नही मिली थी। नेबुकनेजर ने इस बाढ से नगर की रक्षा करने के लिये युफ्रतीज के पूर्वी हिस्से मे ही बडी-बडी नहरे खुदवाई और उनको टाइग्रीस नदी मे मिलवा दिया था। इस बाढ का पानी नहरों से होकर टाइग्रीस नदी में गिर जाता था और नगर की रक्षा हो जाती थी। टाईग्रीस नदी मे पानी गिराने के इस सराहनीय प्रयत्न से नगर की रक्षा हो सकी। यह नहर बहुत ही आश्चर्य जनक थी और उनकी खुदाई में नेबुकनेजर को खजाने का बहुत सा धन खर्च करना पडा था। उसने अनेक सुन्दर तालाब भी खुदवाये थे। वह कलाप्रिय था और इसीलिये उसने नगर में कई सुन्दर उपवन बनवाये। उसके बनवाये हुए उपवन एक से एक सुन्दर एवं आश्चर्य मे डाल देने वाले हैं।

यही उस स्वर्ग नगरी बेबीलोन का कृत्रिम सौन्दर्य था। अब हम पुन उस उद्यान का उल्लेख करते हैं, जिसका जिक्र प्रारम्भ में हमने किया है एक ऊचे मकान पर कई एक मकान बने और सबसे ऊँचाई पर एक उपवन बनाया गया। इस उपवन का घेरा 265 हाथो का था। उसके चारों तरफ चारदीवारी थी और उस पर अनेक बडे बड़े बुर्ज बने हुए थे कहते हैं कि एक तल्ले मकान

से दूसरे तल्ले पर जाने के लिये दस फीट चौडी सीढ़ियों का एक जीना बनवाया गया था। उसी जीने से लोग ऊपर जाते थे। एकदम ऊचाई पर एक विशाल शिलाखड रखा गया था। उस शिला खंड की लम्बाई लगभग बीस फीट और चौडाई 5 फीट की थी। उसके ऊपर लकडी का एक तल्ला मकान बनाया गया था। किसी विशेष प्रकार के मसाले से उसकी जुड़ाई की गई थी। उस मकान के ऊपर मजबूती के साथ ईटो की जुडाई की गई थी। उस पर शीशे काफी मजबूती के साथ जड़े गये थे।

इतना करने के बाद उस पर मजबूत मिट्टी की दीवार उठाई गई थी। लोगों का कहना है कि नीचे जो भी काम किया गया था, वह सब इस ख्याल से कि कहीं ऊपर की मिट्टी की दीवार नीचे खिचक कर ध्वस्त न हो जाय। जिस मिट्टी की दीवार का उल्लेख हमने किया है, वह इतनी चौडी थी कि उस पर बडे-बडे सुन्दर वृक्ष स्थित थे। नीचे से ऊपर तक की बनावट इतनी मजबूती से की गई थी कि उतने बडे-बडे पेडों के रहते हुए भी उसके ध्वस्त होने की कोई सभावना नही थी।

यही वह 'बेबीलोन का हवाई उद्यान' था जिसका जिक्र हम कर रहे है। यह उपवन इतनी खूबी से बना हुआ था कि बाहर से देखने पर मालूम पडता था कि वह कोई बड़ा घना वन है। उसमें बड़ी खूबी के साथ तरह-तरह के सुन्दर फलों व फूलों के वृक्ष लगाये गये थे जिन लोगों ने देखा है वे यही कहते हैं कि ईश्वरीय हाथो ने ही इसका निर्माण किया है। ससार मे लाखो-लाखों एक से एक सुन्दर उद्यान बने हुए है और बन रहे हैं, पर बेबीलोन के उस उपवन की महान् टक्कर का उद्यान न कभी बना और न कभी बनना सभव है। उसके निर्माण की पृष्ठभूमि मे जिन कारीगरों का मस्तिष्क लगा होगा, वे वास्तव मे श्रृद्धा के पात्र हैं।

उद्यान धरती से काफी ऊँचाई पर था। उसकी सिंचाई करने के लिये नदी से पानी मशीन द्वारा ऊपर चढ़ाया जाता था। उद्यान के नीचे और ऊपर जो मकान बनाये गये थे, उनकी कारीगरी भी देखने योग्य ही थी। सभी मकान सुन्दर और रग-बिरगे बने हुए थे। ग्रीष्मकाल में जो एक बार उस उद्यान में चला जाता था, वह कभी वापस आने का नाम नहीं लेता था। सीढियो के दोनो तरफ बडे सुन्दर ढग से रंग-बिरगे पेड-पौधे लगाये गये थे। चारो तरफ पहाड़ के समान मजबूत दीवारें और दीवारो के चारों तरफ विशाल मनोरम पेड कतारो में देखने में ऐसे सुन्दर मालूम पड़ते थे जैसे स्वर्ग के निशात ब ग हा

कहते हैं कि महाराज नेबुकनेजर ने अपनी रानी के विहार के लिये उस अद्‌भुत बाग को लगवाया था। उद्यान मे बैठने पर बेबीलोन का सारा दृश्य एव बलखाती नदियों की तरंगित धाराएं साफ दिखलाई पडती थीं। मीलो तक की भूमि और उर्वर क्षेत्र उस उद्यान से साफ दिखलाई पडता था।

बेबीलोन की महारानी का वह क्रीडा कानन अब नहीं रहा है। विश्व का वह आश्चर्यजनक उद्यान भी समय के चपेटों में धराशायी हो गया है। अन्वेषकों के खोजपूर्ण लेख और इतिहास के पृष्ठ ही अब उसकी स्मृति अवशेष रहे हैं।



मेसोलियम का समाधि मन्दिर

इस पृथ्वी पर समय-समय पर अनेक स्मृति चिन्ह बने हैं। उनमें से कितने ही तो काल के निष्ठुर थपेडों को सहते-सहते अपना निशान तक मिटा गये हैं और उनमे से कितने ही आज भी मौजूद हैं। पर जो मिट गये उनका नाम नही मिटा है, उनकी स्मृतियाँ आज भी इतिहास के पृष्ठो में अमिट और सुरक्षित हैं।

पिछले पृष्ठो में हमने ससार के एक अद्भूत समाधि-मन्दिर का उल्लेख किया है। जिस प्रकार शहंशाह शाहजहॉ ने अपनी बेगम मुमताज महल की याद में ताजमहल जैसे अद्वितीय समाधि (मकबरा) का निर्माण कराया था, इन पृष्ठों में हम उसी प्रकार कीएक अन्य विश्व प्रसिद्ध समाधि का उल्लेख करने जा रहे है।

बहुत ही प्राचीन काल की बात है, केरिया नामक प्रदेश का राजा मैसोलम नाम का एक व्यक्ति था। इस प्रदेश की राजधानी हेलिकोर्नसस नगर में थी। बादशाह मेसोलम की पत्नी का नाम आटिमिसिया था। राजा और रानी मे अद्भुत प्रेम था और वे एक दूसरे को अपने प्राणों से भीअधिक चाहते थे। कहते हैं कि ईसा के जन्म से 363 वर्ष पूर्व बादशाह मेसोलम की मृत्यु हो गई। रानी आटिमिसिया ने अपने पति की याद में एक आश्चर्यजनक समाधि मन्दिर (मकबरा) बनवाया। यही मकबरा संसार के महान् आश्चर्यो में से एक है। अपने दिवंगत पति के प्रति अपना अभूतपूर्व प्यार प्रदर्शित करने के लिये बेगम ने जो मकबरा बनवाया ससार मे उसके टक्कर कीआज कोई भी इमारत नहीं है और संभवत: आने वाले युगों में भी कोई इमारत बन पायेगी कि नहीं इस बारे मे भी नहीं कहा जा है

शाहजहा ने अपनी बेगम की याद मे अपने अद्‌भुत प्यार के प्रतीक स्वरूप ताजमहल जैसी विश्व प्रसिद्ध इमारत खडी करवाई और आर्टिमिसिया ने अपने प्यारे पति की याद मे अपना असाधारण प्यार प्रकट करते हुए एक समाधि मन्दिर का निर्माण करवाया जो संसार के आश्चर्यो मे से एक है। मेसोलम के सम्बन्ध में कहते हैं किवह बड़ा ही वीर तथा पराक्रमी बादशाह था। वह भीइमारतों का बडा शौकीन था। जब वह जीवित था तभी उसने अपनी राजधानी हेलिकोर्नसस में एक बड़ा ही आलीशान महल बनवाया था। पुस्तको मे उस महल के सम्बन्ध मे पढने से पता चलता है कि वह कितना अद्‌भुत था। महल सुन्दर मजबूत ईटों का बना हुआ था और उसका परकोटा सफेद संगमरमर पत्थर का बना हुआ था।

बादशाह मेसोलम की राजधानी हेलिकोर्नसस के तत्कालीन सौन्दर्य का वर्णन भी पठनीय है। पौराणिक काल की पुस्तकों में इस नगर के सौन्दर्य का बडा ही मोहक वर्णन पढ़ने को मिलता है। कहते है कि विश्व प्रसिद्ध 'मेसोलियम' (मेसोलम का मकबरा) और बादशाह का बनवाया हुआ महल इसनगर की दो अद्‌भुत वस्तुएं थी। इसमे और भी अनेक मन्दिर और सुन्दर भवन थे। समुद्र के तट पर स्थित हेलिकोर्नसस नगर हर प्रकार से समृद्ध था। यहाँ की प्राकृतिक शोभा भी बड़ी ही मोहक थी। नगर मे मार्स (बुध), बेनस (बासन्ती देवी) और मरक्यूरी (वरूण) आदि देवताओं के कई सुन्दर मन्दिर बने हुए थे। इससे पता चलता है कि उस जमाने में केरिया प्रदेश के निवासियो में देवताओं की पूजा का प्रचलन काफी जोरों पर था। आज भी कई मन्दिरों के भग्नावशेष एवं नगर के विशालमहलों के खण्डहर वहां वर्तमान है। खण्डहरो को देखने से ही उस नगर में तत्कालीन समय में बने आलीशान महलो का अन्दाजा लग जाता है।

संसार के जिन प्रसिद्ध प्राचीन काल के अन्वेषको ने इस नगर को और इसकी इमारतो को अपनी ऑखों देखा था, उनका कहना है कि भवन कला में हेलिकार्नेसस के मुकाबले में शायद ही अन्य कोई नगर हो। यहॉ एक से एक सुन्दर निवास के लिये महल, देवताओं के लिए मन्दिर आदि भरे पडे है। उन सभी सबों में मेसोलम बादशाह का मकबरा तो विश्व में अद्वितीय ही है। कहते है कि रानी आटिमिसिया ने अपने प्यारे पति की याद में इस समाधि मन्दिर को बनाने में इतना धन खर्च किया था कि, जिसकी कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती। एक बार एक विद्वान दार्शनिक ने इस समाधि मन्दिर को देखा था और आश्चर्य में आकर कहा था, "ओह ! केवल पत्थरों को मोल लेने में इतना धन उडा दिया गया

यह समाधि मन्दिर समतल भूमि पर बनवाया गया था। हर तरफ से मन्दिर की लम्बाई 75 हाथ और चारों तरफ से खींची गई चारदीवारी की ऊँचाई 62 हाथ की थी। इतिहासकारो का कहना है कि उस जमाने के दो प्रसिद्ध कारीगर माटिरम और पाइथियस नामक व्यक्तियो को इस मकबरे के बनाने का कार्य सौपा गया था। इन कारीगरो ने इस मकबरे को बनाने मे जिस कारीगरी का नमूना संसार के सामने प्रस्तुत किया वह वास्तव मे अद्वितीय है। आज भी ससार के बडे से बडे कला मर्मज्ञ उन दो महान् कारीगरो की कारीगरी का नमूना देखते ही घंटो आश्चर्य के सागर मे गोते लगाते रहते है। अच्छे से अच्छे कारीगर और विद्वान इंजीनियर तो यह सोच भी नही पाते कि उस जमाने में जब आदमी को अनेक कार्यो के लिये अपनी शक्ति पर निर्भर रहना पडता था, जब न तो विद्या का ही कोई सहारा था और न आज जैसी बडी-बडी मशीने आदि ही थी, ऐसी अवस्था मे भी ऐसी विशाल इमारतों का निर्माण किस प्रकार हुआ यह मामूली कल्पना का विषय नहीं।

मेसोलम के उस समाधि मन्दिर मे 36 ऊचे-ऊंचे स्तम्भ थे। प्रत्येक स्तम्भ की ऊँचाई लगभग चालीस हाथ की थी। पिरामिडो की तरह ही ये स्तम्भ नीचे की तरफ चौडे थे और ऊपर की तरफ पतले होते गये थे। इन स्तम्भों के बीच में जो खालीजगह थी उनमे तरह-तरह की मूर्तियॉ बनाई गई थीं। उन मूर्तियों की बनावट संगमरमर पत्थर की थी और वे एक से एक सुन्दर थीं। उनमें कई मूर्तियॉ तो काफी ऊँची थीं। उस जमाने के चार प्रसिद्ध कारीगरो ने कई वर्षो तक लगातार परिश्रम करके इन मूर्तियों को तैयार किया था। इन्हीं मूर्तियो मे वीनस देवी की भी एक मूर्ति थी जो अत्यन्त ही सुन्दर तथा भव्य थी। विद्वानों का कहना है कि इफीसासनगर के प्रसिद्ध शिल्पी स्कोप्स ने वीनस की कथित मूर्ति को बनाया था। जब सर्वप्रथम रोम के निवासियो ने वीनस की मूर्ति को देखा तो वे दग रह गये। उन्होंने इस मूर्ति की बडी ही प्रशंसा की। आज भी स्कोप्स की बनाई हुई वीनस की मूर्ति ब्रिटिश म्यूजियम की शोभा बढ़ा रही है। शिल्प कला के मर्मज्ञ एवं बड़े-बडे शिल्पी जब कभी यूरोपीय देशो मे जाते हैं तो वीनस की उस मूर्ति को जरूर देखते हैं और हृदय खोलकर उसकी प्रशंसा करते हैं।

मेसोलम के जिस मकबरे का हम उल्लेख कर रहे हैं,उसके चारो तरफ लम्बा चौडा बरामदा बना हुआ था और बरामदे के ऊपर मुँडेर पर एक घुड़सवार की मूर्ति बनी हुई थी जो दखने मे भव्य मालूम पडती थी उस

मकबरे को कारीगरों ने तरह-तरह की सुन्दर मूर्तियो से खूब सजाया था। मकबरे मे प्रवेश करने के लिये कई द्वार बने हुए थे। सभी द्वार काफी मजबूत और कारीगरी के अद्वितीय नमूने थे। द्वारों के बुर्जों की बनावट भी पिरामिडों की तरह ही थी। इन पर भी कई सुन्दर भव्य मूर्तियां सजाई गई थी। इस बरामदे के सामने कई बडे-बडे सुहावने वृक्ष लगे हुए थे। अलग से देखने पर वह समाधि मन्दिर ऐसा लगता था मानो जंगलो के बीच में बना हुआ हो। समाधि मन्दिर के तीसरे हिस्से की वनावट एक गोल ऊचे गुम्वज की तरह थी। ऊपरी हिस्से मे सगमरमर पत्थर की बनी चार घोडों वाली एक गाडी बनाई गई थी। समाधि मन्दिर का यह हिस्सा एक ऊंचे चबूतरे पर बनाया गया था। उस चबूतरे पर चढने के लिये पत्थर की सुन्दर सीढियाँ वनाई गई थीं। मन्दिर का यह भाग सारा का सारा संगमरमर पत्थर का ही बनाया गया था। उसकी ऊँचाई लगभग ९५ हाथ की थी।

इतिहास में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता है कि की मेसोलम वादशाह की रानी आर्टिमिसिया ने इस समाधि मन्दिर को अपने जीवन काल में ही बनवा दिया था। मेसोलम की मृत्यु होने के शीघ्र पश्चात् ही वेगम ने प्रसिद्ध कारीगरों को वुलाकर मकबरा तैयार करने के लिये कहा। काम शुरु हो गया। पर दुर्भाग्यवश आटिमिसिया अपने पति के समाधि मन्दिर को पूर्ण होते न देख सकी। मेसोलम की मृत्यु के दो वर्षो बाद ही उसकी भी मृत्यु हो गई। इस सम्बन्ध में भिक्यनाम के एक प्रसिद्ध विद्वान ने लिखा है कि "रानी की मृत्यु होने के बाद कारीगरो ने स्वयं ही अधूरे काम को पूरा किया।" अपनी अद्‌भुत कारीगरी का नमूना स्थायी रखने के लिये उन्होंने समाधि मंदिर को पूर्ण किया था। सचमुच ही कारीगरों की अद्‌भुत कारीगरी का वह नमूना सैकड़ों वर्षो बाद तक वैसे ही खड़ा रहा और देखने वालों के लिये आश्चर्य और विस्मय का विषय बना रहा।

पर संभवत' प्रकृति देवी को यह स्वीकार नहीं था कि उसकी कृतियों को चुनौती देती हुई धरती की गोद में मानव की अद्‌भुत कृतियाँ भी विद्यमान रहे। इसीलिये प्रकृति समय-समय पर उन पर अपने वज्र प्रहार करती रहती है। आज हेलिकार्नेसस के वे अद्‌भुत महल, मेसोलम का विश्व प्रसिद्ध समाधि मदिर और प्रसिद्ध कारीगरों की अद्‌भुत कारीगरी के नमूने, सब मिट गये हैं। केवल उनकी स्मृतियाँ ही शेष है। वेगम ने जो समाधि मन्दिर अपने प्यारे पति की याद में बनवाया था वह आज नहीं है पर उसका आँखों देखा वर्णन हमें आज भी पढने को मिलता है और हम उसको आश्चर्य मे चकित

रह जाते हैं। जब वह समाधि मन्दिर खडा था, तब भी उसे देखकर देखने वाले दांतों तले उगली दबाते थे, और आज भी उसकी महानता का रोचक तथा सजीव वर्णन पढकर लोग आश्चर्य मे पड़े बिना नहीं रहते। जिस प्रकार समय के चक्रचाल मे अनेकों स्मृति चिन्ह मिट गये उसी प्रकार मेसोलम का समाधि मंदिर भी मिट गया।

आर्टिमिसिया के बनवाये इस समाधि मन्दिर को सर्वप्रथम रोम के निवासियों ने देखा था। उन दिनों रोम और ग्रीक आदि देशों मे अनेक भव्य इमारतें खडी थी। पर उस मेसोल्दिम के मुकाबले में तो दूर रहा, कोई भी इमारत सौन्दर्य और विशालता मे उसके पासग मे नही आ सकती थी। उसे देखकर बडे-बडे रोम के कारीगर आश्चर्य से देखते ही रह जाते थे।

अब उस स्थान पर मेसोलम के उस समाधि मन्दिर का कोई चिन्ह भी वर्तमान में नहीं है। परन्तु उस मन्दिर के कुछ भग्नावशेष आज भी ब्रिटेन के कौतुकालय(म्यूजियम) मे विद्यमान हैं। दूर-दूर के इजीनियर और बड़े-बडे कारीगर उन्हें देखते हैं और उनकी बनावट को देखकर आश्चर्य प्रकट करते है। बेगम आर्टिमिसियाने अपने पति की यादगार मे मेसोलियम जैसे महान् आश्चर्यजनक समाधि मन्दिर का निर्माण तो कराया ही, अपने पति की यादगार मे वह एक और भी महान कार्य कर गई। कहते हैं कि उसने अपने तत्कालीन कवियों को बुलाया और अपने पति के सद्गुणों की प्रशसा में कविता रचने की उनसे प्रार्थना की। उसने यह घोषणा की थी कि जिसकी रचना सर्वोत्तम होगी उसे वह बहुत ही मूल्यवान पुरस्कार देगी। इस पर अनेक कवियोने मेसोलम की प्रशंसा में कई पुस्तकों की रचना की। उसमें प्रसिद्ध अलंकारिक कवि मफ्रेटियस की रचना आर्टिमिसिया को बहुत पसन्द आई और उसने मफ्रेटियस को बहुत से बहुमूल्य पुरस्कार दिये।

प्राचीनकाल में 'विश्व के आश्चर्यों' मे और भी कई समाधि मन्दिरो का जिक्र पढने को मिलता है। उनमे कई तो आज इतिहास की बातें बनकर ही रह गये हैं, और कई अभी भी विद्यमान हैं। कहते हैं कि रोम में काम्पस मासियस नामक ऑगस्टस मेजर का बनवाया हुआ एक समाधि मन्दिर था। इसकी बनावट का हाल पढकर हम सहज ही इसकी महानता की कल्पना कर सकते हैं। वास्तव में यह समाधि मन्दिर भी एक आश्चर्यजनक वस्तु थी। कहते हैं कि इसकी बनावट एक दम गोल थी और जैसे-जैसे वह ऊँचा होता गया था उसकी गोलाई कम होती गई थी इसमें तीन बरामदे थे उन पर एक पर एक इस प्रकार से चार बने हुए थे सबसे ऊपर वाले मका

में सम्राट की एक मूर्ति थी जो कॉसे नामक धातु की बनी हुई थी। इस समाधि मन्दिर की ऊॅचाई चार सौ फुट की थी। आज भी इस मन्दिर के अवशेष देखने को मिलते हैं। इन अवशेषों को देखकर ही उसकी विचित्र बनावट का पता चल जाता है।

इसी प्रकार कहते हैं कि सिकन्दर महान ने अपने मित्र हेफिसन का समाधि मन्दिर बेबीलोन नगर में बनवाया था। वह मन्दिर भी अद्‌भुत तथा बडा विशाल था। आज भी हेफिसन का समाधि मन्दिर अपने भग्नावशेषों मे खड़ा है। कुछ लोगों का तो यहॉ तक कहना है कि विश्वप्रसिद्ध मेसोलम के समाधि मन्दिर की कुछ सीमा तक बराबरी यही मन्दिर कर सकता है। इस मन्दिर का प्रथम खण्ड दूसरे वाले से बड़ा है। कितने ही खण्ड इस मन्दिर मे बने हुए हैं। सबसे नीचे वाला खण्ड स्वंर्ण खंचित 240 जहाजों के अग्रभाग से सुशोभित है। दूसरे खण्ड में ग्रीस के अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों की मूर्तियॉ बनी हुई हैं। यह मन्दिर बडा ही भव्य है और इसकी सजावट बड़ी सुन्दर है। कहते है कि जब कोई सबसे ऊपर वाले खण्ड में गाता है तो ऐसा लगता है कि वहॉ की सभी मूर्तिया गा रही हैं। इसका कारण यह है कि जो राक्षसों की मूर्तियॉ बनी हुई हैं, वे खोखली हैं औरगाने वाले की आवाज उन मूर्तियों से टकराकर प्रतिध्वनित होती रहती है।

एक और भी प्रसिद्ध समाधि मन्दिर का उल्लेख यहॉ कर देना उचित रहेगा। कहते हैं कि फारस के प्रसिद्ध बादशाह डोरायस ने अपने लिए एक समाधि मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर एक पहाड को काट कर बनाया गया था। आज भी डोरायस का यह समाधि मन्दिर मौजूद है और दूर-दूर के लोग उसे देखने के लिए जाते हैं। यह मन्दिर विश्व की आश्चर्यजनक इमारतों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। विद्वानों का कहना है कि आज से लगभग 2350 वर्ष पूर्व इस समाधि मन्दिर का निर्माण हुआ था। बादशाह डोरायस ने अपने जीवन काल में ही इस मकबरे को बनवाया था। 2350 वर्षो में अब तक इस इमारत को न जाने कितनी ही विघ्न बाधाओं के बीच से गुजरना पड़ा होगा पर आज भी वह समाधि मन्छिर ज्यों की त्यो खडा है। इस समाधि मन्दिर के सामने एक लम्बा चौडा बरामदा भी है। इसमें चार स्तम्भ हैं और प्रत्येक स्तम्भ की ऊंचाई लगभग बीस फुट की है। मध्य में भीतर प्रवेश करने के लिये एक द्वार है। कहते हैं कि यह द्वार बाद में बनवाया गया था। पहले सामने से कोई द्वार नही था। बरामदे के ऊपर नाव की शक्ल की एक मूर्ति बनी हुई है अगल मनुष्यो की कई मूर्तिया बनी हुई है बरामदे के

दोनों कोने पर ग्रिफिन (पखदार सिंह) की दो मूर्तियाँ बनी हुई है। बरामदे के मध्य भाग में नाद के नीचे बादशाह डोरायस की आकर्षक मूर्ति लगी हुई है। पहले समाधि मन्दिर में प्रवेश करने के लिये गुप्त मार्ग बने हुए थे। आज भी बहुत थोड़े लोगों को उन मार्गों का पता है। लोगों का कहना है कि किसी सुरंग के बीच होकर वह मार्ग समाधि मन्दिर तक गया हुआ है।

ऊपर हमने जितने समाधि मन्दिरों का उल्लेख किया है, उन सब मे हेलिकार्नेसिस का मेसोलियम का समाधि मन्दिर ही विश्व के 'सात आश्चर्यों' मे गिना जाता है। वास्तव में अन्य कोई भी इमारत न तो उस समय उसके टक्कर की थी और संभवत आने वाले समय मे भी न बन पाये। जिन्होंने भी उसे देखा, सिर्फ यही कहा है कि संसार मे इसकी तुलना में कोई इमारत नहीं।

मेसोलियम के समाधि मन्दिर पर आश्चर्य प्रकट करते हुए एक रोमन तत्ववेत्ता ने टिप्पणी की थी कि, "इस समाधि मन्दिर को बनाने में जितना धन खर्च किया गया, उससे एक नया हेलिकार्नेसिस नगर बसाया जा सकता था। केवल पत्थरो को एकत्र करने मे जितना धन लगाया गया होगा, उससे तो किसी धातु का महल तैयार हो सकता था।"

आज वह महान् समाधि मन्दिर नहीं है। उसके अवशेष ब्रिटिश म्यूजियम में आज भी सुरक्षित हैं। काल के करारे थपेडे किसी को नहीं छोडते। जैसे बडे-बड़े पराक्रमी काल के आगमन पर संसार से अपना नाता तोड़ लेते हैं, वैसे ही उनकी महान कृतिया भी मिट जाती हैं। प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि संसार नश्वर है। यहाँ पर किसी भी पदार्थ का जैसा का तैसा बना रहना असंभव है। जिसका निर्माण होगा, उसका विनाश भी अवश्यभावी है। सभव है एक दिन यह संसार ही न रहे; जब सृष्टि का विधान ही निर्माण और विनाश के सूत्रो पर आधारित है, तो फिर किसका क्या ठिकाना!



अलेकजेण्ड्रिया का आकाशदीप

समुद्र मे आने जाने वाले जहाजो को सकटो के समय चेतावनी देने के लिये तथा समुद्र के विनाशकारी पर्वतीय चट्टानो से अपनी रक्षा करने के लिये जहाँ-तहाँ अनेक प्रकाश स्तम्भ बने हुए हैं। यहां पर हम ऐसे ही एक अति विशाल एव आश्चर्यजनक प्रकाश स्तम्भ का उल्लेख करेंगे। वह प्रकाश स्तम्भ है अलेक्जेण्ड्रिया का 'लाइट हाउस' जिसे हमने आकाशदीप की संज्ञा दी है। यह प्रकाश-स्तम्भ विश्व के उन महान सात आश्चर्यो मे से एक है जिनकी ख्याति संसार मे फैल चुकी है। इनको देखकर तथा इनके वृतान्त को पढकर हम प्राचीन काल के आदमियों की कला और कारीगरी का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। आज भी पश्चिमी राष्ट्रों ने समुद्री यातायात में सुविधा के लिये स्थान-स्थान पर कई विशाल प्रकाश स्तम्भ बनवाये हैं। भारत के समुद्रो में भी ऐसे कई प्रकाश स्तम्भ हमें देखने को मिलेंगे। जिन लोगों ने बम्बई के 'गेट वे ऑफ इंडिया' का समुद्री तट देखा है, उन्हे दूर समुद्र मे बने वे प्रकाश स्तम्भ अवश्य ही दिखाई पड़े होंगे जो बन्दरगाह में आने वाले जहाजों को मार्ग निर्देशन देते रहते है। परन्तु वे प्रकाश स्तम्भ एक दम छोटे हैं और उनमे कोई आश्चर्य की विशेष बात बात दिखाई नही देती है।

सिकन्दर महान ने जब मिश्र देश पर विजय प्राप्त की थी तब उसने वहाँ की धरती को बहुत उपजाऊ पाकर वहाँ एक बन्दरगाह बनाना चाहा था। उसने देखा कि मिश्र की भूमि बड़ी उपजाऊ है और यहाँ पर एक सुन्दर [illegible] बसाया जा सकता है। उसने अपने इस सकल्प को कार्यान्वित किया। उसने [illegible] नाम क एक व [illegible] बसाया इस [illegible] को बनवाने

महान् गुण था। वह आदमी की योग्यता को पहचानता था और किस काम के योग्य कौन व्यक्ति है इसकी परख उसमे बडी तेज थी। उसकी इसी बुद्धिमता का फल यह हुआ कि अलेक्जेण्ड्रिया नाम का बन्दरगाह बडे ही सुन्दर ढग से बन सका। बदरगाह के बन जाने पर सिकदर बडा प्रसन्न हुआ। उसने उसके बनाने वाले चुने हुए कारीगरो को बहुत सारे पुरस्कार भी दिए।

जिस समय सिकन्दर मरने लगा उसने अपने जीते हुए राज्यो को अपने वीर तथा चतुर सेनापतियों मे बांट दिया। टेलिम्स्टिर नामक वीर सेनापति को उसने मिश्र का राज्य दिया। इसी टेलिमिस्टर ने अलेक्जेण्ड्रिया के समुद्र में ऐसा प्रकाश स्तम्भ बनवाया जो ससार में अद्वितीय था। इतिहास लेखको का मत है कि अपने जीवन काल मे टेलेमिस्टर उस प्रकाश स्तम्भ को पूर्ण नहीं करवा सका। उसके मरने के पश्चात् उसके पुत्र टेलेमी फिलाडेल्फस ने उस स्तम्भ को पूर्ण कराया। जो भी हो, इतना स्पष्ट है कि टेलिमिस्टर ने ही प्रकाश स्तम्भ की नीव रखवाई थी।

अलेक्जेण्ड्रिया के इस प्रकाश दीप का नाम 'फेरोस' रखा गया था। उसी काल से अब तक वहाँ जितने भी प्रकाश स्तम्भ बने उनको 'फेरोस' ही कहते हैं। उन दिनों, जिस समय का उल्लेख हम यहा पर कर रहे हैं, जहाजियो को समुद्र में तरह-तरह की आपदाओ का सामना करना पडता था। अत जहाजियों को उन आपदाओं से बचाने के लिये टेलिमिस्टर ने एक बहुत ही ऊँचा तथा अद्भुद् प्रकाश-स्तम्भ बनवाया। कहते है कि इस प्रकार स्तम्भ की ऊँचाई तीन सौ हाथ की थी और एक सौ मील की दूरी तक उसमे जलते हुए दीपक का प्रकाश दिखलाई पडता था।

प्रकाश स्तम्भ के नीचे का भाग काफी चौडा था। परन्तु जैसे-जैसे ऊँचा होता गया उसका घेरा कम होता गया था। उसके सबसे ऊपरी हिस्से मे एक दीप जला करता था। स्तम्भ मे कितने ही खण्ड बने हुए थे। पहले, दूसरे और तीसरे खण्डो की बनावट छ कोनों वाली थी। परन्तु चौथा खण्ड चौकोर बनावट का था और पांचवा खंड एक दम गोल हो गया था। इसके पश्चात् शिखर तक स्तम्भ की बनावट गोल ही थी। ऊपर तक जाने के लिए चक्राकार सीढियाँ बनी हुई थीं। उन सीढियो के सहारे लोग आसानी से नीचे से ऊपर तक जा सकते थे। स्तम्भ के एकदम ऊपरी हिस्से पर कई एक रग-बिरगे शीशे लगे हुए थे। बहुत दूर तक के जहाजों का प्रतिबिंब इन शीशो मे उतर आता था। स्तम्भ के ऊपरी हिस्से मे सदा दीप जला करता था और एक सौ मील की दूरी के जहाजो को उस प्रकाश स्तम्भ से अपना सही मार्ग

निर्धारण एव चयन करने मे बडी सहायता मिलती थी। उस प्रकाश को देखकर जहाज के चालक भयानक मार्गों को छोडकर सही रास्ते की ओर बढकर चले आते थे।

कहते हैं कि ससार प्रसिद्ध उस प्रकाश स्तम्भ को पत्थरो से तैयार किया गया था। समुद्र की निर्मम लहरों को प्रलंयकारी थपेडों से स्तम्भ की रक्षा करने के लिये चारों तरफ से एक चारदीवारी बनवाई गई थी। इस प्रकार समुद्र की लहरे उसी चारदीवारी पर अपना प्रहार करती और स्तम्भ उनके चपेटों से बच जाता। प्राचीन काल के अन्वेषको का कहना है कि इस स्तम्भ को बनवाने मे लगभग पचास लाख रुपये खर्च हुए थे। उस जमाने मे, आज से हजारों वर्ष पूर्व एक स्तम्भ के निर्माण में पचास लाख रुपये खर्च किया जाना कोई मामूली बात नही थी। आज कल की तुलना में उस पचास लाख रुपयों का मूल्यांकन कई करोड रुपयो मे किया जा सकता है।

हमने पहले कहा है कि विद्वानों का मत है कि सेनापति टेलिमिस्टर के जीवन काल मे वह प्रकाश स्तम्भ पूरा नहीं बन सका था। उसके पश्चात् उसके पुत्र टिलेमी फिलाडेल्फस ने उसे पूर्ण कराया था और उस पर अपना नाम खुदवा दिया। पर कुछ प्रसिद्ध विद्वानो का कहना है कि सेनापति टेलिमिस्टर ने अपने जीवन काल मे ही इस प्रकाश स्तम्भ को पूर्ण करवा दिया था। क्योंकि उसके शासन काल के इतिहास मे इस प्रकाश स्तम्भ से समुद्र में आने जाने वाले जहाजों के मार्ग निर्देशन का पता चलता है। उनका कहना है कि उसकी मृत्यु के कुछ समय बाद प्रकाश स्तम्भ का कुछ हिस्सा ध्वस्त हो गया था। उसकी फिलाडेल्फस ने मरम्मत करवाई और उसने उस पर अपना नाम खुदवा दिया। हम भी विद्वानों के इसी कथन को सत्य मानते है। प्राचीन काल के इतिहास में हमें मिलता है कि सेनापति टेलिमिस्टर ने ही अलेक्जेण्ड्रिया के फेरोस का निर्माण करवाया था।

मनुष्य की वह अद्भुत कृति जिसका स्थान आज भी विश्व के सात महान आश्चर्यो मे लिखा जाता है, अब नही है। उसके कुछ अवशेष आज भी वर्तमान हैं, जिन्हें देखने से उसकी विशालता और लोगो की सराहनीय कारीगरी का अन्दाज हम लगा सकते हैं। स्पष्ट है कि तीन सौ हाथ ऊँचा वह प्रकाश स्तम्भ जो पॉच खडो मे बना हुआ था, समुद्र के अथाह जल-राशि में किन कठिनाईयो का सामना करते हुए बनाया गया होगा। इसकी कल्पना करना भी कठिन है। आज इतने अद्भुत वैज्ञानिक साधनों के होते हुए भी उसकी का प्रकाश नहीं बन पाया है। पर काल के गाल

मे आदमी की वह कृति मिट गई है। आज तो उस प्रकाश स्तम्भ के कुछ छिट-पुट अवशेष भर शेष वचे है जो हमें उसके गौरव की स्मृति दिलाते है। कव और कैसे उस प्रकाश स्तम्भ का विनाश हुआ, इसका कोई प्रमाण हमे नही मिलता है। संभवत किसी समय अपने आप ही समुद्र की तेज लहरो के प्रहार से वह गिर गया होगा और अनन्त जल राशि मे सदा-सदा के लिए समा गया होगा।

कहते है कि इस प्रकाश-स्तभ को अलेक्जेण्ड्रिया से एक वाध के द्वारा मिलाया गया था। यह वॉध पत्थर का वना हुआ था और वडा ही मजवूत था। वॉध के टूटे हुए हिस्से अभी भी समुद्र के भीतर दिखलाई पडते हैं। पहले जहॉ यह प्रकाश स्तम्भ वना हुआ था, उसके समीप ही आजकल एक दूसरा प्रकाश स्तम्भ वना हुआ है। कुछ लोगों का कहना है कि आजकल अलेक्जेण्ड्रिया का वन्दरगाह जहॉ वना हुआ है, पुराना बन्दरगाह वहॉ पर नहीं था। पुराने बन्दरगाह के खडहरों के देखने से भी इस वात की पुष्टि होती है। अभी भी वहॉ पुराने जमाने की अनेक स्मृतियां हैं, जिन्हे देखकर उन कुशल कारीगरों की कारीगरी की याद हो आती है, जिन लोगों ने सर्वप्रथम अलेक्जेण्ड्रिया का वन्दरगाह बनाया था।

एक जमाना था कि अलेक्जेण्ड्रिया का बन्दरगाह वडे नगरों में गिना जाता था। उस समय यहॉ छ लाख की आबादी थी। जिनमें तीन लाख नगर के निवासी थे और तीन लाख खरीदे हुए दास रहा करते थे। नगर मे कई अच्छी-अच्छी सडके थीं, और बडे-बडे आलीशान महल बने हुए थे। दो सडके बडी चौड़ी थी, इनमे से प्रत्येक सड़क की चौड़ाई एक हजार फीट के लगभग थी। सडके नगर के एक छोर से दूसरे छोर तक चली गई थीं। अव वह हराभरा अलेक्जेण्ड्रिया का प्राचीन नगर नही रहा है। उसके कुछ हिस्से तो समुद्र में समा गये और शेष हिस्से खडहर के रूप मे आज भी विद्यमान है।

प्राचीन काल के जिन रोमन अन्वेषकों ने इस नगर और उस आश्चर्य जनक प्रकाश स्तम्भ को देखा था। उनके खोज पूर्ण लेखो से हमें उस समय की पूरी जानकारी प्राप्त होती है। एक स्थान पर लिखा गया है कि प्रसिद्ध प्रकाश स्तम्भ के वनाने में कई हजार लोगों को मृत्यु की गोद में जाना पडा था। कभी-कभी ऐसा होता था कि स्तम्भ बनते-वनते समुद्र की लहरों के टकराने से अचानक उसका कोई हिस्सा गिर पडता था। परिणामतः जितने भी मजदूर उस पर रहते हुए काम करते रहते थे, वे सभी समुद्र की अनन्त जलराशि मे डूबकर अपने जीवन की लीला समाप्त कर देते थे। ऐसा कई बार हुआ था।

कभी जोरो का तूफान उठता और कई आदमी तूफान के झोकों से दूर बीच समुद्र में चले जाते और फिर उनका पता नही चलता था।

इस प्रकार हजारो आदमियो ने अपने प्राणो की आहूति दी और तब कही संसार का वह आश्चर्यजनक प्रकाश स्तम्भ बनकर तैयार हुआ। ससार मे और भी कई जगह समुद्र में प्रकाश स्तम्भ हैं पर अलेक्जेण्ड्रिया का वह स्तभ सबमें अद्वितीय था। इतिहास मे नेपुल्स के समुद्र में बने एक प्रकाश स्तभ का उल्लेख भी हमे पढने को मिलता है। यह प्रकाश स्तम्भ भी बड़ा अनूठा था।

कहते हैं कि ईसा के जन्म से दो सौ वर्ष पूर्व नेपुल्स के समुद्र तट पर पिजोली नाम का एक सुन्दर बन्दरगाह बसाया गया था। यह बन्दरगाह भी ग्रीस निवासियों ने ही बसाया था। यही पर समुद्र मे जहाजियों की सुविधा के लिए एक प्रकाश स्तम्भ भी बन__ गया था। एक समय ससार मे इस बन्दरगाह की बडी प्रसिद्ध थी। व्यापारिक दृष्टिकोण से इस समुद्री तट की बडी उपयोगिता थी और प्रतिदिन अनेक जहाज यहां से आते जाते रहते थे। किनारे तक यहॉ का समुद्र बहुत ही गहरा था और बडे-बडे जहाज भी आसानी से माल लाद कर तट तक चले आते थे। पर अफसोस है कि अब न तो उस बन्दरगाह का पता चलता है और न वह स्तम्भ ही वहां पर है। हॉ, उसकी स्मृतियॉ वहॉ के अवशेषो में आज भी विद्यमान है। अब केवल उसकी कहानियॉ ही हमें पढने को मिलती हैं।

यूरोपीय देशो मे एक और भी प्रसिद्ध तथा आश्चर्यजनक प्रकाश स्तम्भ है जो आज भी विद्यमान है। एडिस्टन लाइट हाउस के नाम से यह प्रकाश स्तभ ससार भर में प्रसिद्ध है। यह स्तम्भ भी आदमी की कारीगरी का सुन्दर जीवित उदाहरण है। इसकी बनावट मे यद्यपि कोई विशेष चमत्कार नही है तब भी अच्छे से अच्छे कारीगरों का सिर भी इसे देखकर चकरा जाता है। इस स्तम्भ को बने अभी बहुत दिन नही हुये हैं। दो सौ वर्ष पहले इसको बनवाया गया था। तब से आज तक यह पर्वत की तरह दृढ खड़ा हुआ है। कहते हैं कि इस प्रकाश स्तम्भ को पहले दो बार बनवाया गया था और दोनों ही बार आदमी की शक्ति पर समुद्र ने विजय प्राप्त की थी। दोनों ही बार समुद्र के थपेडो से प्रकाश स्तम्भ गिर पडा था। तब तीसरी बार उसे बनवाया गया और तब से उसे बने लगभग दो सौ वर्ष हो गये, वह ज्यों का त्यो खडा है। इस स्तम्भ की बनावट आदि देखकर जान पडता है सैकडों वर्षो तक यह ऐसे ही खड़ा रहेगा

जिस एडिस्टन के प्रकाश स्तम्भ का उल्लेख हम कर रहे है वह समुद्र मे स्थित एक पहाडी चट्टान पर बनाया गया है। प्लाइमाउथ मे पश्चिम और दक्षिण की ओर कुछ दूर हट कर समुद्र मे यह स्तम्भ खडा हुआ है। इसके सब से नजदीक का नगर रोमीय है जो प्रकाश स्तम्भ से दस मील की दूरी पर है। इससे पहले इस स्थान पर जो प्रकाश स्तम्भ बना हुआ था उसका बनना सन् 1696 ई में आरम्भ हुआ था और सन् 1700 मे स्तम्भ बनकर तैयार हुआ था।

इस स्तम्भ को सर्वप्रथम हेनरी विन्सटॉनल नाम के अंग्रेज ने बनवाया था। पर दुर्भाग्यवश वह स्तम्भ अधिक दिनो तक नही रह सका। तीन वर्ष बाद ही नवम्बर के महीने में एक रात जोरों का तूफान उठा। उस समय हेनरी कई और आदमियो के साथ स्तम्भ की चौथी मंजिल पर चढकर उसकी मरम्मत करवा रहे थे। तभी अचानक वह स्तम्भ अपने बनाने वालो को लिये हुए समुद्र मे गिर पडा। सन् 1706 ई मे फिर स्तम्भ को बनाने का काम शुरू किया गया। रेडियार्ड नामक एक कारीगर को यह काम सौंपा गया। उस कारीगर ने वहॉ पर लकडी का एक बहुत ऊँचा और मजबूत प्रकाश स्तम्भ बनाया। परन्तु दुर्भाग्य से सन् 1755 में आग लग जाने से रेडियार्ड का सारा श्रम जलकर राख हो गया। कहते हैं कि लकडी का वह स्तम्भ बहुत ही मजबूत था और यदि आग न लगती तो संभवत. सैकडो वर्षो तक वह खडा रहता।

आज जो प्रकाश स्तम्भ वहॉ पर खडा है उसे स्मिटन नामक एक अग्रेज ने बनवाया है। यह स्तभ ऊपर से नीचे तक पत्थर का बना हुआ है। इसकी बनावट गोल है। परन्तु नीचे का भाग जितना चौडा है, ऊपर का भाग उतना चौडा नहीं है। ऊपर का हिस्सा कुछ पतला होता गया है। स्तम्भ के शिखर पर कोर्निश है और उस पर रोशनी करने का एक स्थान बना हुआ है। स्तम्भ के आगे वाले हिस्से में चारों तरफ बरामदा है और भीतर आने जाने के लिये एक दरवाजा भी बना हुआ है। स्तम्भ पर ऊपर चढने के लिये सीढियाँ बनी हुई है और बीच में पहरेदारों के रहने के लिये सुन्दर आवास भी बना हुआ है। कहते हैं कि यह स्तम्भ भी बहुत मजबूत है और सैकडो वर्षो तक ऐसे ही खड़ा रह जाय तो कोई आश्चर्य नही है। ऊपर चोटी पर जहॉ रोशनी रखी जाती है, वहीं उस पर एक रिफ्लेक्टर रखा हुआ है। उस रिफ्लेक्टर को ढॅकने के लिये ताबे का एक ढक्कन बना हुआ है और इस ढक्कन पर बडी तेज कलई की हुई है, जिससे बहुत दूर से आने वाले जहाजों को भी इसकी चमक मिलती है। इसके कारण प्रकाश बहुत दूर तक जाता रहता है।

इनके अतिरिक्त और भी कई अद्‌भुत प्रकाश स्तम्भो का उल्लेख मिलता है। जेनेवा उपसागर के पश्चिम में एक प्रकाश स्तम्भ अब तक बना हुआ है। एक ऊँची पहाडी पर यह प्रकाश स्तम्भ बनाया गया है। इसीलिये बहुत दूर से ही यह दिखाई पडने लगता है। यह स्तम्भ भी बनावट की कारीगरी मे आश्चर्यजनक है। सचमुच मे इसके निर्माण मे बनाने वालो को अद्‌भुत कौशल का परिचय देना पड़ा होगा। इस स्तम्भ को किसने बनवाया और कब बना इसका पता नही चलता है। 'एनकोना' नाम बन्दरगाह मे भी एक प्रकाश स्तम्भ है जो आजकल के बड़े से बड़े कारीगरों को चुनौती दे रहा है।

लोगो का कहना है कि एनकोना का यह प्रकाश स्तम्भ अठारहवी शताब्दी का बना हुआ है। इस बन्दरगाह में एक ही बड़ा लम्बा-चौडा घाट है। उसी घाट के एक किनारे पर बहुत ही ऊँचा एक प्रकाश स्तम्भ बना हुआ है। विद्वानों का कहना है कि वेनाविटल नाम के एक प्रसिद्ध कारीगर ने इस स्तम्भ को बनाया था। यह इतना ऊँचा और मजबूत बना हुआ है कि देखने वाले दंग रह जाते हैं। ऊपर से नीचे तक यह स्तम्भ पत्थर का बना हुआ है। इसके ऊपर जाने के लिये स्तम्भ में चक्रदार सीढियाँ बनी हुई है।

इनके अतिरिक्त भी संसार में और भी कई छोटे-बडे प्रकाश स्तम्भ बने हुए हैं। परन्तु कारीगरी की दृष्टि से वे इतने महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसीलिये उनका यहाँ उल्लेख करना ठीक नहीं जान पड़ता। इन सब प्रकाश स्तम्भों में अलेक्जेण्ड्रिया का प्रकाश स्तम्भ यदि आज होता तो निश्चय आजकल के इजीनियरो को उससे बहुत कुछ सीख मिलती। उस स्तम्भ की भव्यता और विशालता आदि के कारण ही हमने उसे 'आकाश दीप' कहना उपयुक्त समझा। तीन सौ हाथ ऊँचे प्रकाश स्तम्भ को, जिसकी रोशनी एक सौ मील की दूरी तक जाती है, उसे 'आकाश दीप' नहीं तो और क्या कहेंगे।



इफिसास का डायना देवी का मन्दिर

प्राचीन काल में एशिया माइनर में इफिसास नाम का एक नगर बसा हुआ था। उस जमाने मे इस नगर की सभ्यता, संस्कृति और कला कौशल की चर्चा सारे संसार में विख्यात हो रही थी। ससार के अत्यन्त प्रसिद्ध नगरो मे इफिसास नगर की गणना की जाती थी। वहाँ मानवी कला के एक से एक उत्तम उदाहरण मौजूद थे। पृथ्वी के विभिन्न देशों के लोग उन कला-कृतियो को देखने के लिये आते-जाते और उनकी प्रशंसा करते रहते थे। स्मारना नगर से चालीस मील दक्षिण पूर्व मे इफिसास का यह हरा-भरा नगर बसा हुआ था। इसी नगर में विश्व का प्रसिद्ध डायना देवी का मन्दिर बना हुआ था जिसे संसार के सात महान् आश्चर्यो मे से एक माना जाता है। परन्तु अब वह आश्चर्यजनक वस्तु वर्तमान मे मौजूद नहीं हैं। उसके कुछ अवशेष अब भी बचे हुए हैं जिन्हें देखकर बड़े-बड़े विद्वान आश्चर्य मे पड़े बिना नहीं रह सकते।

जिस डायना देवी के मन्दिर का उल्लेख हम यहाँ पर करने जा रहे हैं, उसे ग्रीस के निवासी देवी आर्टेमिस कहते हैं। रोम वाले उसी देवी को देवी डायना कहते हैं। डायना देवी को लोग चन्द्र भगवान की पत्नी तथा नभ, थल तथा स्वर्ग की स्वामिनी माना करते थे। लोगो की यह धारणा थी कि डायनादेवी सभी शक्तियो से परिपूर्ण है और समस्त लोको पर उनका समान अधिकार है। जिस प्रकार हमारे देश मे देवी दुर्गा की महिमा सर्वोपरि बताई जाती है उसी प्रकार रोम और ग्रीस के निवासी देवी डायना (आर्टेमिस) को सर्व शक्तियो से पूर्ण देवी मानते थे। अब तो उन देशों में ईसाई धर्म के प्रचार के पश्चात मूर्ति पूजा का नामो निशान मिट सा गया है और लोग अपने

देवी देवताओ को भूल से गये हैं परन्तु जिस जमाने की वात हम कर रहे है, उस समय रोम और ग्रीस के निवासियों मे मूर्ति पूजा आदि का अत्यधिक प्रचलन था। डायना देवी को वहॉ के निवासी प्रसिद्ध देवी मानते थे। उनका स्वर्गिक नाम 'चन्द्राधिष्ठात्री' पृथ्वी का नाम डायना या आर्टेमिस और पाताल का नाम सीकेट था। रोम और ग्रीस वाले इस देवी की सत्ता को हर जगह सामान्य रूप से मानते थे।

एक बार सिसरो नामक विद्वान ने कहा था कि रोम और ग्रीस मे डायना नाम की तीन देवियॉ है। प्रथम तो वह जो जुपीटर और लाटेना से पैदा हुई थी, जिससे एपोलो देवता का जन्म भी हुआ था, दूसरी जुपीटर के प्रोसीर पाइन नाम की पत्नी से जो कन्या पैदा हुई थी और तीसरी जो उपीस के ग्लेस नाम की पत्नी से जो कन्या जन्मी थी। तीनों को ही डायना देवी के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु इन तीनों में जुपीटर की लाटेमा नामक स्त्री से जो कन्या पैदा हुई थी वही अधिक प्रसिद्ध समझी गई और उसी की अधिकतर पूजा हुआ करती थी। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह डायना देवी कुमारी है और इनका सौंदर्य अवर्णनीय है। ये वन में ही बिहार किया करती है। अनेक प्रकार के शस्त्र चलाने मे ये पूर्ण निपुण है। शिकार खेलने का इन्हे बडा हो शौक है। इसके साथ अनेक कुमारियॉ बराबर घूमा करती है। इसके सिर पर मुकुट शोभायमान है, हाथ मे तीन कमल और पीठ पर बाणों से भरा तरकस बंधा रहता है। कुत्ता इनका दास है।

परन्तु जिस विश्व प्रसिद्ध डायना देवी के मन्दिर का हम उल्लेख कर रहे है, उसकी मूर्ति में उपर्युक्त वर्णित डायना देवी के होने का आभास नही मिलता है। क्योंकि उस प्रकार की उनकी वेश-भूषा का वर्णन हमें उसमें नही मिलता है। इफिसास वाली डायना देवी की मूर्ति में अन्य विशेषताए है। इस आकृति मे इनके वक्षःस्थल पर अनेकानेक स्तन है और उन स्तनों के चारो ओर राशिचक्र बने हुए है। इनमे बारह राशियों के चिन्ह वर्तमान हैं। इस चित्र से यह कल्पना होती है कि देवी डायना में मातृत्व प्रचुर मात्रा मे था। वह अपने भक्तों को पुत्रवत् प्यार करती है तथा उनकी अभिलाषाओ की पूर्ति किया करती है।

एशिया माइनर के इफिसास नगर मे इसी डायनादेवी का वह भव्य मदिर था जिसे ससार के महान आश्चर्यो में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। ग्रीस

:श की कारीगरी का यह मन्दिर एक ज्वलत उदाहरण था। वैसे तो ग्रीस देश के निवासी प्राचीन समय में कारीगरी आदि में काफी बढ़े-चढ़े थे और उनकी कारीगरी के कितने ही उदाहरण आज भी ब्रिटिश म्यूजियम मे देखने को मिलते है, परन्तु डायना के मन्दिर का निर्माण कर उन्होंने अपनीकारीगरी को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया था।

डायना देवी का यह मन्दिर पर्वतीय तलहटी में एक विशाल झील के तट पर बनाया गया था। कहते हैं कि इस मन्दिर के निर्माण के लिये इस स्थान का चुनाव इसलिये किया गया कि उस स्थान पर भूकम्प से मन्दिर के क्षतिग्रस्त होने का उतना भय नही था। अकसर भूकम्प के प्रहार से बडे-बडे मजबूत मकान भी ढ़ह जाते थे। इसीलिये पर्वत की तलहटी में सरोवर का वह तट डायना देवी के मन्दिर के लिये सब प्रकार से पक्का एव उचित स्थान था। इस मंदिर के निर्माण मे कितना धन खर्च किया गया था, इसका कोई प्रमाण हमें नही मिलता पर इसमें कोई सदेह नहीं है कि इसके ऊपर अपार धनराशि का व्यय किया गया होगा। विद्वानों का कहना है कि इस मंदिर की नीव बनवाने में जितना धन खर्च किया गया, ठीक उतना ही सारे मंदिर की शेष इमारत को बनवाने में खर्च किया गया था। इससे हम उस मंदिर की नींव की मंजबूती की कल्पना कर सकते हैं।

पहाड की जिस तलहटी में इस मन्दिर को बनवाया गया था, उस पहाड से एक सोता निकला है। पहले इस सोते के पानी से तलहटी की सारी भूमि डूब जाया करती थीं। इसके परिणामस्वरूप बडी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती थी। कहते हैं कि सोते के पानी से वहाँ की भूमि को बचाने के लिये बडी-बडी कई नहरों जैसी नालियाँ बनवाई गई थीं। उन नालियो से होकर सोते का पानी काफी दूर चला जाता था और मन्दिर के आस-पास की भूमि डूबने से बच जाती थी। कहते है कि उन नालियों मे लगाने के लिये इतना पत्थर खोदना पडा था कि उस विशाल पर्वत के चारों तरफ का भाग ही लगभग खोद डाला गया था। इसके कारण वहां पर कितने ही गड्ढे हो गये थे।

प्लिनी नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् ने इस मंदिर की बनावट का जिक्र करते हुये लिखा है कि—"मंदिर की नीव को मजबूत करने का उद्देश्य कारीगरे के सामने प्रमुख था। इसके लिये पहले नींव की जमीन पर आग बिछा-

गई थी, ताकि उस स्थान की नमी खत्म हो जाय। नमी मिट जाने से जमीन स्वतः काफी मजबूत हो गई। इसके पश्चात् उस जमीन पर ऊन बिछाया गया था। मंदिर के बनाने में जो खर्च लगा था, उसके लिये काफी दूर-दूर से चन्दा इकट्ठा किया गया था। लोगों ने खूब उत्साह के साथ चदा दिया था। इस प्रकार पूरे 120 वर्षो मे मंदिर बनकर तैयार हुआ था। इस मंदिर की लम्बाई 285 हाथ के लगभग थी। मंदिर की सुन्दरता बढाने के लिये एव उसकी रक्षा के लिये उसमें 127 खम्भें बनाये गये थे। प्रत्येक खंभे की बनावट में बहुतसा धन खर्च हुआ था। उनमें से प्रत्येक खंभे की ऊँचाई चालीस हाथ की थी। उनमें से कुछ खंभो पर बडी सुन्दर चित्रकारी भी की गई थी। उन चित्रकारियो को देखकर बनाने वाले को प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता था।''

मंदिर की विशालता और भव्यता का अन्दाज हम इस उपर्युक्त कथन से लगा सकते है। विद्वानों का कहना है कि चान्दीक्रान नाम के किसी कारीगर ने इस मदिर को बनाया था। पर जान पडता है इस महान् कार्य को कोई एक कारीगर नहीं कर सकता था। इसलिये इस मंदिर को चॉन्दीक्रान की कृति मात्र समझ लेना भूल होगी। अवश्य ही इसके निर्माण में और भी बहुत से कुशल कारीगरों ने योगदान किया होगा।

मंदिर के निर्माण मे अधिकतर सफेद संगमरमर का उपयोग ही किया गया था। कीमती लकडी और सोने का काम भी जहा-तहां किया गया था। इसमे अनेक सुन्दर मूर्तियां रखी गई थीं और मूल्यवान् तस्वीरों से मंदिर को सजाया गया था। इसकी सजावट ऐसी थी कि देखने वाला देखते ही रह जाता था। कहते है कि इफिसास नगर की डायना देवी के इस मंदिर और उसकी मूर्ति की ख्याति उन दिनों समस्त संसार मे फैली हुई थी और ससार के प्राय हर हिस्से से लोग इफिसास के सौन्दर्य और डायना देवी के भव्य मंदिर को देखने के लिये आते थे। कई सौं वर्षो तक इस मदिर की ख्याति संसार मे फैलती रही थी। जो एक बार इसे देख लेता था वह उसकी अद्भुत कलाकारी की जी भर कर प्रशसा करता था। सदियो तक मनुष्य की वह अद्भुत कृति मनुष्यों की बुद्धि को चक्कर में डालती रही है।

'इतिहासकार कहते हैं कि 'नीरो' नामक एक प्रसिद्ध लडाकू ने इफिसास पर आक्रमण किया। उसकी विजय हुई और इस प्रसिद्ध मन्दिर के रत्नो आदि को लूटकर वह चलता बना सौभाग्यवश मन्दिर की

इमारत को उसने हानि नहीं पहुँचाई। पर उसकी भीतर की आभा को, उसकी शोभा को उसने आभाहीन कर दिया। उसमे जो बहुमूल्य मूर्तियॉ थी तथा सोने और अन्य बहुमूल्य रत्नो से जो काम किया गया था उसे उस लुटेरे ने निकाल लिया। उसके कुछ वर्षो पश्चात् ही सम्राट गॉलिन्स के राज्यकाल मे गेथ नाम की असभ्य लुटेरी जातियों ने इफिसास को खूब लूटा-खसोटा और मन्दिर की इमारत का विनाश कर दिया। संसार का वह अपूर्व ऐश्वर्य लुटेरी असभ्य जातियों के प्रहारों को नहीं सह सका और अपनी याद छोडकर मिट्टी मे मिल गया। लुटेरों ने मंदिर की इमारत को गिरा दिया और नीरो की लूट से बची हुई मूल्यवान् मूर्तियों को और स्वर्ण आदि कीमती रत्नों को लूट कर ले गये। इतने पर भी मंदिर के समस्त वैभव को वे न मिटा सके। उसके पश्चात् भी जिस अवस्था में वह मंदिर खडा था, वह संसार के लोगो के लिये आश्चर्य और कुतूहल से भरा हुआ था।

विद्वानों का मत है कि ईसा की छठीं शताब्दी में जेस्टिसियन नाम का बादशाह इस मंदिर की शेष बची सारी मूर्तियों को कस्तुनतुनिया (कांसटेन्टिनोपल) में उठा कर ले गया। उसके पश्चात् मंदिर के बचे हुए स्तम्भो पर ईसाईयो के गिरजाघर का निर्माण कराया गया। इस गिरजाघर को ईसाई मतावलम्बी सत सोफिया नाम के व्यक्ति ने बनवाया था। सन् 1736 ईस्वी मे बिशप (बड़े पादरी) पोक्फ एशियामाइनर में आये थे और मंदिर के ध्वस्त खंडहरो को उन्होंने देखा था। उन्होने एक पुस्तक लिखी ओर उसमे मंदिर के खंडहरो का ऑखों देखा वर्णन किया–

"मंदिर के दक्षिण और पश्चिम के कोने के भाग अब भी खड़े हुए हैं। उसके पश्चिम हिस्से में एक विशाल वृक्ष लगा हुआ है जो अब मुरझा गया है। जान पड़ता है कि किसी समय यह वृक्ष जब हरा-भरा रहा होगा तो इसकी छाया कास्टर नदी के तट तक फैली हुई रही होगी। मंदिर और उसका आगन सशक्त चारदीवारी से घिरा हुआ है। अब भी इसको देखने से आदमी की बुद्धि का चमत्कार दिखलाई पडता है। सचमुच इसके बनाने वालों में अपूर्व कारीगरी होगी, क्योंकि ऐसा अद्‌भुत मंदिर बनाना मामूली मस्तिष्क का काम नही है। जिसको देखने मात्र से हमारे आश्चर्य और विस्मय का ठिकाना नहीं रहता, उसके निर्माण में कारीगरो को किन-किन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा होगा, इसकी कल्पना हम सहज ही नहीं कर सकते। मन्दिर के आगन मे पत्थरो का लगा हुआ है मंदिर के कुछ हिस्से और स्तम्भ सफ

संगमरमर के बने हुए हैं। इसके निर्माण मे कितना धन व्यय किया गया होगा, इसकी कल्पना करना बहुत ही कठिन है।''

हमने पहले कहा है कि जिस स्थान पर मदिर की इमारत खडी थी वहा पर संत सोफिया नाम के ईसाई ने गिरजाघर बनवा दिया था। परन्तु आज भी वहां पर मदिर के कुछ टूटे-फूटे भाग वर्तमान में मौजूद हैं, जो इफिसास की पौराणिक कारीगरी की गौरव कथा का गान कर रहे है। ब्रिटिश म्यूजियम में भी मंदिर के कुछ अवशेष रखे हुये है। आज जो कुछ भी है वह केवल चिन्ह मात्र है। जब इफिसास का हरा-भरा विश्व प्रसिद्ध नगर का ही लोप हो गया तो फिर उस डायना के मदिर की इमारत का क्या कहना। पहले जहां पर इफिसास नगर बसा हुआ था, वहां पर अब खेती होती है। कहीं-कहीं नगर की पुरानी इमारतों के खंडहर आज भी दिखाई पडते है।

कहते हैं कि इफिसास नगर में तीन प्रसिद्ध गिरजाघर बने हुए थे। उनमें से एक तो वही था जो इफिसास के डायना देवी के मंदिर की नींव पर बनाया गया था। इसमें से दो गिरजाघर तो समयान्तर मे गिर पडे। शेष एक पर बाद मे मुसलमानों ने एक मस्जिद बनवा दी। इफिसास नगर से पास ही तुर्क जाति के लोगों ने एक नया नगर बसाया। कहते हैं कि इस नगर के निर्माण में इफिसास के खण्डरो का अनेक प्रकार का सामान, चौखट, किंवाड़ और ईट आदि लगाये गये। कुछ लोगो का यह भी कहना है कि इफिसास के खडहरो के सामान से ही तुर्को का यह नया नगर बन कर आबाद हो गया था।

ब्रिटिश म्यूजियम में अभी भी डायना देवी की एक मूर्ति रखी हुई है। पर यह इफिसास नगर वाली डायना देवी की मूर्ति नही है। उस मूर्ति का क्या हुआ, इसका कोई अता-पता नहीं चला। सभव है उसे गेथ जाति के असभ्य लुटेरो ने तोड़-फोड डाला हो, अथवा बादशाह जेस्टिसियन उसे भी कस्तुनतुनिया उठाकर ले गया हो। जो भी हो उस मूर्ति के सम्बन्ध मे कोई पता नही चलता है। ब्रिटिश म्यूजियम मे जो डायना की मूर्ति रखी हुई है, उसके विषय मे लोगो का कहना है कि रोम नगर से चार मील पश्चिम की ओर एक स्थान पर यह मूर्ति सन् 1772 ई मे पाई गई थी। यह मूर्ति संगमरमर के पत्थर की बनी हुई है। इसकी कमर मे धोती की तरह का वस्त्र लिपटा हुआ है और कमर के ऊपर का हिस्सा कुर्ते की तरह के एक वस्त्र से ढका हुआ है

इसके दाहिने हाथ मे एक वल्लम है और देखने से ऐसा जान पडता है कि वह वल्लम चलाने की तैयारी मे हैं। कई प्रसिद्ध शिल्पियों का कहना है कि इस मूर्ति के हाथ बाद में नये बनाकर लगाये गये है। क्योंकि डायनादेवी के जिस हाथ मे वल्लम है, वास्तव मे उसका वही हाथ तरकस में रखे हुये तीर पर होना चाहिये और भी अन्य मूर्तियाँ जो डायना देवी की पाई गई हैं, उनमे ऐसी ही मुद्रा है, इसी आधार पर शिल्पी मूर्ति के वल्लम वाले हाथ को बाद का बनाया हुआ बतलाते है। इस मूर्ति के पीठ पर तरकस का चिन्ह अभी तक भी विद्यमान है, पर वहाँ तरकस नहीं है। कहते है कि तरकस पीतल का बना हुआ था, और उसे किसी ने निकाल लिया।

यद्यपि इफिसास नगर मिट गया और वहाँ का संसार प्रसिद्ध डायना देवी के मंदिर का निशान भी बाद मे गिरा जिस मिट गया, पर उन महान् कारीगरो की याद आज भी बनी हुई है और सदियो तक बनी रहेगी जिनकी कृतियाँ हजारों वर्षो बाद भी संसार मे आश्चर्य और विस्मय की वस्तु बनी हुई है।

❑❑❑

रोम का विशाल क्रीड़ांगण–
"कोलोसियम"

ससार में समय-समय पर आदमी ने अपने आराम, सुख और मनोरजन के लिये तरह-तरह की वस्तुओ का निर्माण कराया है। उनमें से कुछ तो ऐसी वस्तुएं हुई हैं जो संसार में अद्भुत गिनी जाने लगी और उनका अद्वितीय स्थान माना जाने लगा। पहले के पृष्ठों में हमने कई आश्चर्यजनक निर्माणों का हवाला दिया है । अव हम रोम के उस "क्रीडांगण ' का वर्णन कर रहे है। जो ससार की आश्चर्यजनक निर्माण कला मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

प्राचीन काल में रोम के निवासियों मे कला प्रियता काफी वढ-चढ कर थी। ग्रीस और रोम आदि पश्चिमीय देश सभ्यता, संस्कृति और कला आदि मे अग्रणी माने जाते थे। उस जमाने मे लोगों को खेल-कूद, सामूहिक आमोद-प्रमोद, मूर्ति पूजा आदि की वडी चाह रहती थी। रोम का विशाल 'क्रीडागण' उसका अद्भुत उदाहरण है। इस क्रीडागण को 'कोलोसियम' कहते हैं। अठारहवी शताब्दी में फ्रास और इग्लैण्ड के अन्वेषणकर्ताओं ने जव सर्वप्रथम इसकोलोसियम को देखा था तो अचानक ही उनका मन आश्चर्य के सागर मे गोते लगाने लगा था। उन्हे कल्पना भी नही की थी कि खेल-कूद और मनोरजन के लिये इतनी अपरिमित धनराशि व्यय करके ऐसे आश्चर्यजनक प्रागण का निर्माण मनुष्य कर सकता है। ऐसा विशाल भवन आदमी की कलाप्रियता एव निर्माण कुशलता का अद्भुत उदाहरण था।

आज यद्यपि इस विशाल कोलोसियम का केवल खंडर खड़ा हुआ है तथापि जिस रूप मे आज भी यह वर्तमान मे दिखाई देता है उसे देखकर

आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता है, इस भवन का निर्माण चार मंजिलों का है और उसमें एक ही साथ पूर्ण-सुविधा के साथ अस्सी हजार व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था है। अनुमान किया जा सकता है कि जिस भवन में 80 हजार आदमियों के बैठने की व्यवस्था की गई होगी, वह कितना विशाल होगा, इसके अधिकांश भाग आज भी अच्छी दशा में विद्यमान हैं, कुछ हिस्से जो काल की करालता में अपने अवशेषों को छोड़कर लुप्त हो गये, अब भी इस बात का स्मरण दिलाते हैं, कि जब यह पूर्ण हालत में अच्छी स्थिति में खड़ा होगा तो विश्व में यह एकमात्र अकेला ही रहा होगा।

विद्वान इतिहासकारों का मत है कि सम्राट वेस्पासियन ने इस क्रीडांगण का निर्माण प्रारम्भ कराया था। परन्तु उसके जीवन काल में यह पूर्ण नही हो सका था। बाद मे टिटस ने इसको पूरा कराया था। जहाँ पर रोम के प्रतापी सम्राट नीरो का प्रथम महल खड़ा था, उसी स्थान पर केलोसियम का निर्माण हुआ है सन् 80 ई. मे केलोसियम का विशाल भवन पूर्णरूप से बनकर तैयार हुआ था। कहा जाता है कि जिन गुलामों को पकड़ कर रोम मे लाया जाता था और उन्हें बन्दी बनाया जाता था, उन्हीं लोगो ने इस केलोसियम को बनाने मे काम किया था। विद्वानो का अनुमान है कि इस काम के लिये केवल पैलेस्टाइन से ही बारह हजार गुलाम कैदी बनाकर लाये गये थे। इसके अतिरिक्त और स्थानों से हजारो की सख्या मे गुलामो को लाया गया था। केलोसियम के निर्माण में उनसे तरह-तरह के कठोर काम लिये जाते थे। उनको सम्राट की तरफ से किसी प्रकार की मजदूरी भी नहीं दी जाती थी। यहाँ तक कि जो गुलाम अपनी आवश्यकता के कारण पुन काम करने के अयोग्य हो जाता था, उसको जान से मार डाला जाता था। सैकडो की संख्या मे तो गुलाम भूख से तडफ-तडफ कर केलोसियम के निर्माण स्थल पर हीअपने प्राण गवा देते थे।

पैलेस्टाइन तथा अन्य स्थानो से हजारो की सख्या मे जिन गुलामो को बुलाया गया था उनमें से कुछ ही बचकर वापस लौट सके, शेष या तो काम करते-करते मर गये या उनको अयोग्य समझकर मार डाला गया। प्रारम्भ मे जब केलोसियम बनकर तैयार हुआ तो इसका घेरा एक तिहाई मील मे था। प्रांगण की दीवार की लम्बाई प्रत्येक तरफ से 620 फीट की थी और चौडाई 513 फीट तथा ऊँचाई 150 फीट की थी। केलोसियम का भीतरी क्रीडा-मैदान (एरेना) 285 फीट लम्बा और 185 फीट चौड़ा था। दर्शकों के बैठने के लिये चारो तरफ से कुर्सीदार सीढियां बनी हुई थी सबसे निचली कुर्सी की

सीढी खेल के घेरे (एरेना) के बिल्कुल समीप थी। इसमें तरह-तरह की उस जमाने के लिये मनोरंजात्मक खेल प्रतियोगिताए हुआ करती थीं। आज भी एरेना का एक भाग कुछ खण्डित घेरे की अवस्था में देखा जा सकता है। सीढियाँ चारो तरफ से खण्डहर की स्थिति में अब भी वर्तमान मे मौजूद है। उन्हें देखने से आदमी की निर्माण-कला का अद्भुद् परिचय मिलता है। यद्यपि इतिहास के पृष्ठ इस बात के साक्षी है कि उसके निर्माण के पत्थर हजारो-हजारों मानव जाति के खून से सने हुए है, निस्सहाय प्राणियों की आह उसमे दबी पडी है, पर यदि ऐसा न होता, तो वह कोलोसियम आज इसक ससार की अद्भुत कृतियो मे स्थान ही कैसे पाता।

प्राचीनकाल में इस कोलोसियम मे जो खेल तमाशे होते थे, वह आज की परिस्थिति में पूर्ण पैशाचिक तथा अमानवी कहे जा सकते है। परन्तु उन दिनों की वही माग थी, सभ्यता की वही परिधि थी, उसी घेरे मे लोगो को उन्ही तरीकों से अपने मनोरंजन का जरिया ढूढना होता था। इस कोलोसियम मे छुट्टी के दिनो में हजारों की संख्या में लोग मनोरंजन का लाभ प्राप्त करने के लिये पहुंचते थे। वहां पर पशु और पशु की लडाई, आदमी और आदमी की लड़ाई तथा आदमी और पशु की लडाई हुआ करती थी। खेल के उस घेरे मे दो लडने वालो को चाहे वह आदमी और आदमी हो, चाहे पशु और आदमी हो, चाहे वह पशु और पशु हो, छोड दिया जाता था। दोनों उस समय तक अविरत युद्धरत रहते थे, जब तक कि उन दोनो मे से एक सदा-सदा के लिए अपने प्राणो से हाथ न धो बैठता था। जब तक दो लडने वालो मे से एक की मृत्यु नहीं हो जाती थी,लडाई बन्द नहीं होती थी। दर्शक तालिया पीट-पीटकर एक दूसरे को प्रोत्साहित करते रहते थे, उनको ललकारते रहते थे।

रोम के कोलोसियम के इस क्रीडांगण में कितनी लडाईया हुई और कितने लोगों के प्राण गये, इससे इतिहास के पन्ने रक्त रंजित हैं। कहते है कि रोम के राजा के जन्म दिन पर इस मैदान में बहुत बडे पैमाने पर उस प्रकार के खेलो का आयोजन होता था। उस दिन प्रजा के मनोविनोद के लिये एक हजार जगली पशुओ और दो सौ लडाकू आदमियो की हत्या की जाती थी। यही था उन दिनों के रोम निवासियों का मनोरंजन। ऐसी रोमाचकारी कहानियों से इतिहास के हजारों पन्ने लाल हो चुके है। इसी कालोसियम के घेरे में हजारों ईसाई धर्मावलम्बियो को भूखे शेर के सामने उनके भोजन के निमित्त फेक दिया जाता था

सचमुच में तो यह कालोसियम का प्रांगण संसार का सबसे विशाल मानव एवं पशु बलिदान का अखाड़ा ही था। आदमी के खून से क्रीडांगण के उस घेरे की धरती जितनी भीगी हुई है, उतनी संभवत: बडी-बडी लड़ाइयो के मैदान में भी नहीं भीगी होगी।

धीरे-धीरे समय के अधकार मे हजारो-लाखो का प्राण लेने वाला कोलोसियम का अधिकांश भाग लुप्त होता चला गया। उस जमाने में, लोगो मे ऐसे विशाल अद्भुद् निर्माणो की सुरक्षा के प्रति कोई चेतना नही थी। धीरे-धीरे इस युग का अधकारमय समय आया और लोगो को बड़े-बडे विशाल महलो की ओर से अरूचि बढने लगी। लोगो को मानवो की सहायता का ज्ञान ही नही रहा। कहते है कि बाद मे बडे-बडे कला मर्मज्ञ शिल्पी कोलोसियम के पास आते थे और उससे कीमती संगमरमर के पत्थरो को काट कर ले जाते थे। एक विद्वान अग्रेज ने इस कोलोसियम के विनाश का उल्लेख करते हुये लिखा है–

'लाखो ईसाईयो के खून से सावोर कालोसियम का भवन लुटेरे शिल्पियो के लिये एक पर्वत से अधिक महत्व नहीं रखता था। जिस प्रकार लोग पहाडो से पत्थर काटकर-काटकर अपने भवन निर्माण के लिये ले जाते है, उसी प्रकार धीरे-धीरे लोगो ने कोलोसियम के विशाल भवन से कीमती पत्थरो को काट-काटकर ले जाना शुरू कर दिया। यदि ऐसा न होता तो हजारों वर्षो तक यह भवन अपने गौरव पर गर्व प्रकट करता खडा रहता। इसके पत्थरों से रोम में हजारो आलीशान महल तैयार हो गये। मगर आज भी कलोसियम के खंडहरो को देखने से ज्ञात होता है कि यह पर्वत कभी खाली होने वाला ही नहीं है।''

अठारहवीं सदी में जब लोगों ने इस विशाल भवन को ठीक से देखा तो इस यादगार स्थल की रक्षा करने की उन्हे चिन्ता हुई। तभी बेनीडिक्ट पोप चौदहवे ने सन् 1750 में इसमे से पत्थर काटने और इसको नष्ट करने पर रोक लगा दी। तब से इसमें से पत्थरो का काटना बन्द हो गया है और इसको ईसाईयो के प्राचीन स्मारक के रूप मे माना जाने लगा है। आज भी जिसे विदेशो मे जाने का अवसर मिलता है, वह रोम के इस विशाल क्रीडांगण को देखने की उत्कंठा नही रोक सकता और इसको एक बार देखने के साथ ही आश्चर्य से उसकी आँखें विस्फारित रह जाती है।

अठारहवी शताब्दी के पश्चात से धीरे-धीरे ससार के लोगों का इस कालोसियम के सम्बध म अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने की ओर

झुकाव होने लगा। तब से हजारो लेख और कहानिया इसके सम्बन्ध मे प्रकाशित होती रही है। ईसाई सन् के प्रारम्भ होने से सन् 550 तक रोम निवासियो का यह क्रीडागण ज्यो का त्यो खडा रहा और वहा के लोग क्रूर खेल तमाशो तथा आदमियो के वलिदान मे इस स्थान को काम में लाते रहे। नवी शताब्दी के आगमन तक यह रोमवासियो का क्रीडास्थल वना ही रहा परन्तु वाद मे धीरे-धीरे मध्यकालीन सामन्तो और शिल्पियों ने अपने काम के लिये इसमे से पत्थर निकालना प्रारम्भ कर दिया और इस संसार प्रसिद्ध वलिदान तथा नृशस क्रीडास्थल का निशान मिटने लगा। रोम के साम्राज्य कालीन शासन मे यह भवन ईसाईयों को वन्दी बनाने और उन्हे तरह-तरह की यातनाये पहुंचाने के काम में आता रहा था। हजारों की संख्या मे ईसाई इसमे वन्द कर दिये जाते थे। उनमे से कितनो की ही हत्या कर दी जाती थी तथा कितनो को ही एरेना में भूखे शेर के सामने छोड दिया जाता था।

जिन हजारो की संख्या में वाहर से लाये गये गुलामों को रोम के इस कालोसियम के निर्माण कार्य मे लगाया गया था, उसके सम्बन्ध मे एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक लिखता है–

"कोलोसियम (रोम का क्रीडाभवन) के बनने में कई वर्ष लगे थे। इस काल में पेलेस्टाइन और अन्य स्थानों से लाये गये गुलामों को ही काम मे लगाया जाता था। उनके साथ आदमी की तरह व्यवहार नही किया जाता था। कभी-कभी तो शरीर से अशक्त हुये सैकडो गुलामो को एक साथ ही जान से मार डाले जाने की भी राजा की ओर से आज्ञा होती थी। दो दिनो, चार दिनो मे कभी उन गुलामो को एक बार खाने के लिये दिया जाता था। इस प्रकार गुलाम शरीर से कुछ दिनों में एक दम अशक्त हो जाते थे। वाद में उन्हे जान से मार दिया जाता था। जितने भी गुलाम इस काम के लिये लाये गये थे उनमे से वहुत थोडे ही फिर अपने घर वापस लौटकर जा सके थे।"

इससे स्पष्ट है कि कोलोसियम की नींव को हजारों की संख्या मे मनुष्यो के रक्त से सींचा गया है। हजारो की कब्र की ढेर पर खडा रोम के राजाओ और निवासियो का यह विशाल क्रीडाभवन एक ओर संसार में अपने निर्माण कला की प्रधानता के लिये प्रसिद्ध है, तो दूसरी ओर हजारों निरीह प्राणियो की पीडा और असह्य यातनाओं की कहानी इसके पत्थरों में से प्रत्येक की रगो मे दबी पडी है

संसार के ईसाई धर्मावलम्बी इस भवन को निर्दोष ईसाइयों का सब से बड़ा कब्रगाह मानते हैं, और आज जो इसकी सुरक्षा की ओर पश्चिम के राष्ट्रों तथा रोम निवासियों का ध्यान आकर्षित है, इसका मुख्य कारण भी यही है।

संसार के सबसे प्रसिद्ध इस क्रीडांगण को रोम के प्रसिद्ध सम्राट वेस्पेसियन ने बनवाना प्रारम्भ किया था परन्तु वह इस इमारत को पूर्ण करने से पहले ही संसार से कूचकर गया था। इसकी सबसे ऊपरी मंजिल को तीसरी शताब्दी में रोम के सम्राट डोमिशियन ने पूरी करवाई थी। यह भवन तत्कालीन रोम की शक्ति का परिचायक है कहते हैं कि भविष्यवक्ताओं ने यह भविष्यवाणी की थी कि 'जब कोलोसियम का विनाश होगा तब रोम का भी विनाश हो जायेगा।'

अब जरा इस क्रीड़ाभवन के आकार प्रकार का रोचक वर्णन भी पढ़िये। यह भवन एक विस्तृत दीर्घाकार वृत्त के समान था। इसकी प्रत्येक मंजिल में 80 मेहराबदार दरवाजे बने हुए थे और निचले खंड के दरवाजों से होकर तमाशा देखने के लिये बैठने की सीढ़ियों पर जाने का मार्ग था। एरेना (अखाड़ा) का मुख्य भाग 287 फीट लम्बा और 180 फीट चौड़ा एक गोलाकार स्थान था जिसके चारों तरफ 15 फीट ऊँची दीवार थी। इस दीवार के पृष्ठ भाग में सम्राट तथा अग्रपुरोहित, ब्रह्मचारिणियों, सभासदों, न्यायाधीशों तथा राज्य के दूसरे उच्च पदस्थ राज्याधिकारियों के बैठने की जगह थी। पदाधिकारियों के बैठने के स्थान के पीछे जो 'पोडियम' कहलाते थे उनमें 80 हजार दर्शकों के बैठने की व्यवस्था थी।

रोम का यह कोलोसियम संसार की इमारतों में अपने ढंग की अनूठी वस्तु थी। निस्संदेह ही उसके निर्माण में स्थापत्य कला से संबंध रखने वाली अनेक कठिनाईयाँ पड़ी होंगी क्योंकि ऊपर से नीचे तक यह दैत्याकार इमारत चुनकर बनाई गई थी। यही कारण है कि रोम के इस कोलोसियम को संसार में मनुष्य के रचना कौशल का अद्भुत नमूना कहा जाता है।

□□□

पीसा की झुकी हुई मीनार

अठारहवीं शताब्दी के भ्रमणकारियो द्वारा विश्व के जिन सात आश्चर्यो की सूची में अन्य जिन सात आश्चर्यो की सूची सम्मिलित कर दी गई है, उनमें पीसा की झुकी हुई मीनार एक प्रमुख स्थान रखती है। विश्व के अत्यन्त ही आश्चर्यजनक मानवी कृत्यो में इस मीनार का विशिष्ठ स्थान है। पीसा इटली का एक प्राचीन नगर है। कब इस नगर की नींव पडी और किसने इसे बसाया इस सम्बन्ध में इतिहास वेत्ताओं में मतभेद है। परन्तु इस मीनार के निर्माण काल एवं इतिहास की पूरी जानकारी संसार को मिल गई है।

पश्चिमी देशो के, प्राचीनतम इतिहास में इटली भी काफी उन्नतिशील देश बताया गया है। बाद मे तो यह राष्ट्र मेजनी, गैरीवाल्डी एवं राजनीतिज्ञ कैबूर को लेकर अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया था। पुराने काल मे भी अपने कला कौशल तथा विशाल निर्माणों के लिये यह देश ससार में एक प्रधान स्थान रखता है। यहां कला एव निर्माण के आज भी प्राचीन अवशेष विद्यमान है, जिन्हे देखने से ही आश्चर्य होता है। इटली का विश्व विद्यालय और उसके भवन की साज-सज्जा, चित्रकारी आदि देखकर वहां की कला का सुन्दर परिचय हमें मिलता है। परन्तु इटली की सारी कला-कृतियों एवं भवन-निर्माणों मे पीसा की झुकी हुई मीनार अत्यन्त ही महान् एव प्रसिद्ध है। यह देखने मे इतनी विशाल जान पडती है कि सहज ही हम इसे मानवीकृति कहने के लिये तैयार नही होते। जान पडता है साक्षात् विश्वकर्मा ने ही इसके निर्माण में अपनी छेनी और हथौडा उठाया था।

इस मीनार का निर्माण अब से लगभग 800 वर्ष पहले हुआ था। इसकी ऊँचाई 180 फीट है। सारी मीनार कीमती सफेद संगमरमर के पत्थरों से बनी हुई है इसमे नीचे से ऊपर तक एक के बाद एक आठ मजिले है

सभी कोठे स्तम्भो के सहारे बने हुए है। नीचे वाला कोठा सबसे बडा है। इसी प्रकार नीचे से ऊपर तक के कोठो को लम्बाई-चौडाई छोटी होती गई है और सबसे ऊपर वाला कोठा सबसे छोटा है। इसके निर्माण मे कारीगरो ने जिस कला का परिचय दिया है वह संसार मे अन्यत्र कही देखने को नही मिलता है। जिस किसी ने भी इस मीनार को देखा मुक्तकठ से इसकी प्रशसा की। एक बार एक विद्वान कला पारखी ने इसके निर्माण कला का उल्लेख करते हुये कहा—"संसार मे अनेकानेक विशाल सुन्दर महल, मंदिर और इमारतें खडी है, परन्तु पीसा की यह मीनार अपने ढंग की अकेली है। कला का ऐसा अद्भुत सौष्ठव विश्व के किसी भी महल अथवा मन्दिर में देखने को नही मिलता। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है, कि इतनी विशाल ऊँची मीनार का निर्माण कारीगरों ने बालू की नीव पर किया है।"

सन् 1174 ईस्वी मे समीपवर्ती गिरजाघर के लिये इस मीनार को बनाया गया था। बालू की रेत पर इसकी नीव होने के कारण जब यह बन रही थी, तभी वह नीचे धसने लगी। कारीगरो ने बहुत प्रयत्न किया कि इसको सभाल लें, परन्तु वह नीचे की ओर धँसती ही चली गई। धीरे-धीरे नीचे जमीन मे धँस कर यह एक ओर को झुकने लगी। बहुत कोशिशो के पश्चात् भी कारीगर इसे ठीक नहीं कर पाये। तब इसका काम बन्द कर दिया गया। कुछ दिनो के पश्चात् पुनः इस मीनार को बनाने का काम आरम्भ हुआ। इस प्रकार 1350 ईस्वी मे पूर्णरूप से यह मीनार बनकर तैयार हुई। परन्तु उसके पश्चात् भी इसका झुकना न रुका और जिस ओर को यह झुकी थी, उस तरफ झुकी ही रह गयी।

समुद्र से इस मीनार की ऊँचाई सोलह फीट बताई जाती है। कहते है कि इस मीनार के एक सिरे पर चढकर नीचे की ओर लम्बाकार दृष्टि डाली जाये तो जिस स्थान पर दृष्टि पडेगी वह स्थान मीनार के आधार से सोलह फीट की दूरी पर होगा। झुकने के कारण अब यह मीनार एक तरफ को झुक गई है। अठारहवी शताब्दी मे इजीनियरों ने नाप कर देखा तो पता चला कि सतह पर यह मीनार चौदह इंच बाहर की तरफ झुक गई है।

इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलिलियो ने इसी मीनार के शिखर से अपना प्रयोग सिद्ध किया था। गैलिलियो के आविष्कारो से पहले लोगों का विश्वास था कि काफी ऊँचाई से दो वस्तुओ को एक साथ ही गिराया जाय तो अधिक वजन वाली वस्तु पृथ्वी पर तेजी के साथ गिरते हुये पहले पहुँच जायेगी इस सिद्धान्त पर गैलिलियो को सदेह था अत अपना सदेह के

पीसा की झुकी हुई मीनार

अठारहवी शताब्दी के भ्रमणकारियों द्वारा विश्व के जिन सात आश्चर्यों की सूची में अन्य जिन सात आश्चर्यो की सूची सम्मिलित कर दी गई है, उनमे पीसा की झुकी हुई मीनार एक प्रमुख स्थान रखती है। विश्व के अत्यन्त ही आश्चर्यजनक मानवी कृत्यो में इस मीनार का विशिष्ठ स्थान है। पीसा इटली का एक प्राचीन नगर है। कब इस नगर की नीव पडी और किसने इसे बसाया इस सम्बन्ध में इतिहास वेत्ताओं में मतभेद है। परन्तु इस मीनार के निर्माण काल एव इतिहास की पूरी जानकारी संसार को मिल गई है।

पश्चिमी देशो के, प्राचीनतम इतिहास मे इटली भी काफी उन्नतिशील देश बताया गया है। बाद में तो यह राष्ट्र मेजनी, गैरीबाल्डी एवं राजनीतिज्ञ कैवूर को लेकर अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया था। पुराने काल मे भी अपने कला कौशल तथा विशाल निर्माणों के लिये यह देश संसार में एक प्रधान स्थान रखता है। यहां कला एव निर्माण के आज भी प्राचीन अवशेष विद्यमान है, जिन्हें देखने से ही आश्चर्य होता है। इटली का विश्व विद्यालय और उसके भवन की साज-सज्जा, चित्रकारी आदि देखकर वहा की कला का सुन्दर परिचय हमे मिलता है। परन्तु इटली की सारी कला-कृतियों एवं भवन-निर्माणो मे पीसा की झुकी हुई मीनार अत्यन्त ही महान् एवं प्रसिद्ध है। यह देखने मे इतनी विशाल जान पडती है कि सहज ही हम इसे मानवीकृति कहने के लिये तैयार नही होते। जान पडता है साक्षात् विश्वकर्मा ने ही इसके निर्माण मे अपनी छेनी और हथौडा उठाया था।

इस मीनार का निर्माण अब से लगभग 800 वर्ष पहले हुआ था। इसकी ऊँचाई 180 फीट है। सारी मीनार कीमती सफेद संगमरमर के पत्थरो से बनी हुई है इसमे नीचे से ऊपर तक एक के बाद एक आठ मंजिले है

सभी कोटे स्तम्भों के सहारे बने हुए हैं। नीचे वाला कोठा सबसे बडा है। इसी प्रकार नीचे से ऊपर तक के कोठों की लम्बाई-चौडाई छोटी होती गई है और सबसे ऊपर वाला कोठा सबसे छोटा है। इसके निर्माण में कारीगरो ने जिस कला का परिचय दिया है वह संसार मे अन्यत्र कहीं देखने को नही मिलता है। जिस किसी ने भी इस मीनार को देखा मुक्तकंठ से इसकी प्रशसा की। एक बार एक विद्वान कला पारखी ने इसके निर्माण कला का उल्लेख करते हुये कहा—"संसार मे अनेकानेक विशाल सुन्दर महल, मंदिर और इमारतें खडी है, परन्तु पीसा की यह मीनार अपने ढंग की अकेली है। कला का ऐसा अद्भुत सौष्ठव विश्व के किसी भी महल अथवा मन्दिर में देखने को नही मिलता। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है, कि इतनी विशाल ऊँची मीनार का निर्माण कारीगरों ने बालू की नींव पर किया है।"

सन् 1174 ईस्वी मे समीपवर्ती गिरजाघर के लिये इस मीनार को बनाया गया था। बालू की रेत पर इसकी नीव होने के कारण जब यह बन रही थी, तभी यह नीचे धंसने लगी। कारीगरो ने बहुत प्रयत्न किया कि इसको सभाल ले, परन्तु वह नीचे की ओर धँसती ही चली गई। धीरे-धीरे नीचे जमीन मे धँस कर यह एक ओर को झुकने लगी। बहुत कोशिशो के पश्चात् भी कारीगर इसे ठीक नही कर पाये। तब इसका काम बन्द कर दिया गया। कुछ दिनों के पश्चात् पुनः इस मीनार को बनाने का काम आरम्भ हुआ। इस प्रकार 1350 ईस्वी मे पूर्णरूप से यह मीनार बनकर तैयार हुई। परन्तु उसके पश्चात् भी इसका झुकना न रूका और जिस ओर को यह झुकी थी, उस तरफ झुकी ही रह गयी।

समुद्र से इस मीनार की ऊँचाई सोलह फीट बताई जाती है। कहते है कि इस मीनार के एक सिरे पर चढकर नीचे की ओर लम्बाकार दृष्टि डाली जाये तो जिस स्थान पर दृष्टि पडेगी वह स्थान मीनार के आधार से सोलह फीट की दूरी पर होगा। झुकने के कारण अब यह मीनार एक तरफ को झुक गई है। अठारहवीं शताब्दी मे इंजीनियरो ने नाप कर देखा तो पता चला कि सतह पर यह मीनार चौदह इंच बाहर की तरफ झुक गई है।

इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलिलियो ने इसी मीनार के शिखर से अपना प्रयोग सिद्ध किया था। गैलिलियो के आविष्कारों से पहले लोगो का विश्वास था कि काफी ऊँचाई से दो वस्तुओं को एक साथ ही गिराया जाय तो अधिक वजन वाली वस्तु पृथ्वी पर तेजी के साथ गिरते हुये पहले पहुँच जायेगी इस सिद्धान्त पर गैलिलियो को सदेह था अत अपने सन्देह के

निवारणार्थ वह मीनार के शिखर पर चढा और वहॉ से भिन्न-भिन्न भार की दो वस्तुओ को एक ही साथ झुककर गिराया। परिणाम हुआ कि दोनो ही वस्तुए साथ-साथ ही गिरी। इस तरह उसने प्रमाणित कर दिया कि ऊँचाई से पृथ्वी पर गिरने वाली वस्तुओ की रफ्तार उनके भार पर निर्भर नही रहती है।

संसार प्रसिद्ध पीसा की यह झुकी हुई मीनार प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलिलियों के सिद्धान्त के प्रतिपादन मे भी सहायक हो चुकी है। यह मीनार अपने निर्माण काल में ही पृथ्वी में धंस कर झुकी और तब से आज तक सैकडो वर्षो बाद भी उसी झुकी हुई अवस्था मे खडी हुई है। कुछ वर्षो पूर्व लोगो को डर हो गया था कि यह मीनार अब अधिक समय तक खडी नही रह सकेगी, और गिर पडेगी। इस बात से इटली वालो मे चिन्ता की लहर दौड् गई। मुसोलिनी ने तब इस मीनार को और भीमजबूत बनाये रखने के लिये कितने ही दक्ष कारीगरो को उसमें लगाया था।

ऊपर से नीचे तक इस मीनार की सारी बनावट सगमरमर के पत्थर की है। इन्सब्रकू के दो प्रसिद्ध कारीगरो के हाथ में इसके निर्माण का भार सौपा गया था। उन दोनों कारीगरो नेसंसार को चकित कर देने वाली जिस कारीगरी का नमूना प्रस्तुत किया, वह वास्तव में सब प्रकार से सराहनीय है। पूरी की पूरी मीनार गोल है। इसकी दीवारें नीव पर तेरह फीट मोटी है और शिखर पर इसकी मोटाई छ फीट है।

पीसा के उस गिरजाघर मे जिसके समीप यह मीनार खडी है, जब प्रार्थना का समय होता है तो उस का घन्टा मधुरध्वनि से निनाद कर उठता है और इसके पवित्र स्वर-झंकार से समस्त पीसा गूजित हो उठता है। सतह से 180 फीट ऊँचे इस मीनार को देखने के लिये बहुत दूर-दूर के देशों के कारीगर यहाँ आते है। केवल इसी मीनार को लेकर इटली का प्रसिद्ध नगर पीसा विश्व के कारीगरों के लिये तीर्थ स्थान बना हुआ है। कारीगर इसे देखते हैं और इसके बनाने वालों के प्रति श्रद्धा और भक्ति से उनका शीश खुद ही झुक जाता है। इसकी विशालता, सुन्दरता तथा अद्भुत निर्माण कला की वजह से संसार के लोगो ने इसे विश्व के आश्चर्यजनक मानवी कृत्यों मे एक प्रमुख स्थान प्रदान किया है। एक ग्रीक कला-पारखी ने पीसा के इस मीनार को परखने के पश्चात् इसकी प्रशसा मे यहां तक कहा कि, "यदि सही अर्थो मे इस मीनार के सौन्दर्य और विशालता का मूल्यांकन किया जाय तो ससार के आ मानवी निर्माणो मे इसका दूसर नम्बर होना चाहिए

जिस सौन्दर्य का निरूपण यहाँ मिलता है, वह संसार मे अन्यत्र खोजने पर भी नही मिलता।''

रोम, इटली, इग्लैण्ड एव अन्य पश्चिमी देशो मे गिरजाघरों के लिये और भी कितनी ही सुन्दर एव विशाल मीनारें बनी है। किन्तु इन सबके कारीगर इसके कारीगरो की श्रेणी में नही आ सके। हाल ही मे पुन इटली की सरकार ने इस मीनार की मरम्मत करवाने की ओर ध्यान दिया है। यद्यपि कोई नही कह सकता कि इस झुकी हुई अवस्था मे ही सैकडो वर्षो से खडी हुई यह मीनार और कितने वर्षों तक ऐसे ही अक्षुण्ण रूप से खडी रहेगी, तथापि इटली के निवासियो को इस बात की चिन्ता बनी रहती है कि कहीं संसार की अनेक आश्चर्यपूर्ण कला-कृतियो की तरह उनकी प्यारी यह मीनार भी समय के चक्र मे फॅसकर मटियामेट न हो जाय। इसीलिये समय-समय पर सरकार मीनार की मरम्मत आदि का कार्य कुशल कारीगरों द्वारा करवाती रहती है।

बहुत समय पहले मुसोलिनी द्वारा पूर्वकाल मे इस मीनार को सीधा करने की कोशिश की जा रही थी। पहले ही हमने बताया है कि जिस स्थान पर यह मीनार बनी हुई है, उसके नीचे की जमीन बालू रेत की है। अत कारीगरो ने भिन्न-भिन्न तरह के प्रयत्न इसको सीधा करने के लिये किये। परन्तु परिणाम उल्टा ही होता गया। इसकी विशाल इमारत नीचे जमीन मे धसने लगी। पहले सतह से इसका झुकाव केवल सात इच था। परन्तु नीचे धसने के कारण यह और भी झुक गई। हाल के कुछ वर्षो में यह और भी झुक गई है, या नही इसकी कोई सूचना नहीं मिली है।

एक प्रसिद्ध विद्वान का मत है कि पीसा की इस मीनार के रचना कौशल मे जो आश्चर्य निहित है वह इस बात मे नही है कि इतने सौ वर्षो के पश्चात् भी यह इमारत झुकी हुई स्थिति मे भी दृढ खडी है, बल्कि इसकी सुन्दर मजिलों में है जो एक के ऊपर एक बडी खूबसूरती के साथ बैठाई गई है, जिस बहुमूल्य सफेद पत्थर से इसको बनाया गया है उसमें पारदर्शकता के गुण हैं। इसलिये जब सूर्य की रश्मियॉ इस मीनार पर पडती है तो इसमे से दुर्लभ सौदर्य पूर्ण प्रकाश प्रतिबिंबित होता है। इस मीनार के निर्माण मे एक और विशेषता भी है। इसको कारीगरों ने इस अनूठी कला के साथ बनाया है, कि देखने वाला, इसकी अपार विशालता के पश्चात् भी एक ही झलक मे इसके समस्त भागो को बखूबी के साथ देख सकता है।

❑❑❑

रेस्ट नगर का देव-मन्दिर

ससार के हर हिस्से मे वहा की प्राचीन कला-कृतियो की कोई न कोई निशानी देखने को मिलती है। उन्हे देखकर हम सहज ही यह अनुमान लगा सकते है, कि प्राचीन कालीन मे ससार में रहने वाले लोग आजकल के लोगों से कई बातो में बहुत आगे बढ-चढे हुए थे। पिछले पृष्ठों मे हमें लोगों के जिस ढंग से निर्मित मानव निर्माणों का चित्रण देखने को मिला है, उन्हे देखकर आज के वैज्ञानिक युग के बडे-बडे विज्ञान-पंडितों का मस्तिष्क भी चक्कर खाने लग जाता है। प्राचीन रूसी गणतत्र के कुछ हिस्सों में आज भी उसकी प्राचीनतम कला-कृतियो के अनेक नमूने देखने को मिलते है। उनमें रेस्ट नगर का देव मन्दिर ससार मे आश्चर्य जनक मानवी निर्माणो मे अपना प्रमुख स्थान रखता है।

प्राचीन रूसी गणराज्य में केस्पियन नाम का एक प्रान्तर भाग है। इसी प्रान्तर भाग मे रेस्ट का प्राचीन नगर बसा हुआ है। यही वह प्राचीन देव मन्दिर है, जिसका उल्लेख हम यहाॅ पर कर रहे है। बनावट, सौदर्य एव अद्भुत मानवी कला का यह मन्दिर जीवत उदाहरण है। यह मन्दिर अत्यन्त ही प्राचीन है, परन्तु दुर्भाग्यवश उसमें प्राचीनता के चिन्ह अब वर्तमान नहीं रहे हैं। समय-समय पर इस मन्दिर की मरम्मत होती रही है जिसके कारण धीरे-धीरे प्राचीनता का इसमें से लोप होता गया है। कहते हैं कि काफी समय पूर्व जब रूस मे जारशाही की हुकूमत थी उस समय इस मन्दिर के भीतरी भाग को खुदवाने की चेष्टा की गई थी, परन्तु खुदाई करने वालो को सफलता नही मिली। इस कार्य से मन्दिर के आन्तरिक सौन्दर्य मे कुछ खराबी आ गई उसके बाद भी कई बार इसकी [illegible] आदि करवायी गयी जिसके फलस्वरूप इसकी प्राचीनता धीरे धीरे [illegible] होती गई

पश्चिम के राष्ट्रो ने इस मन्दिर को देखकर जो जिज्ञासा प्रकट की थी, उससे यह स्पष्ट है कि वास्तव मे यह मन्दिर बनावट आदि को लेकर विश्व में अपना विशिष्ट स्थान एवं उदाहरण रखता है। उन्होने कहा है, "ऐसे स्थान पर पर्वत के शिखर पर इतना, विशाल, भव्य, सुन्दर तथा शक्तिशाली इमारत का खडा किया जाना, जो सैकडो हजारो वर्षो पश्चात् भी उसी शान म खडी है, साधारण मनुष्य के मस्तिष्क का कार्य नहीं है। निश्चय ही किसी अद्वितीय मस्तिष्क के कारीगर की ही यह कृति है।"

रेस्ट नगर के इस देव मन्दिर की ऊँचाई 140 फीट है। मन्दिर के सभा मंडप मे बीस फीट की ऊँचाई पर मोटे-मोटे लोहे की छडों में एक बडा सा घटा लटक रहा है। उसी घंटे पर एक तरफ पॉच पक्तियों में एक लेख खुदा हुआ है। लेख की प्रत्येक पंक्ति मे उन्नीस अक्षर है। पर उन अक्षरों की लिखावट का ठीक-ठीक पता नही चल सका है। मन्दिर के चारों तरफ एक चारदीवारी बनी हुई है। चारदीवारी मन्दिर का पुराना हिस्सा है। कहते है कि आज उस मन्दिर के द्वार के किवाड की लकड़ी ऐसी हो गई है कि जरा सा हाथ में लेकर मसल देने से मैदे की तरह चिकनी महीन हो जाती है।

इस देव मन्दिर के बहुत से हिस्सों की पिछले वर्षो मे मरम्मत हुई है, और इसीलिये इसका बहुत थोडा हिस्सा ही प्राचीन निर्माण कला की याद मे बचा हुआ है। परन्तु जो कुछ भी बचा हुआ भाग वर्तमान में है, वह इस बात का पक्का सबूत है कि जब यह मन्दिर बना होगा, तो निश्चय ही अपने ढग का अकेला और अनूठा रहा होगा। वैसे तो आज भीससार के विभिन्न हिस्सो मे कई आश्चर्यजनक देव मन्दिर हैं, और उनके निर्माण में भी अद्वितीय कला-कारी का उद्‌घोष किया गया है, परन्तु रेस्ट का यह देव मन्दिर कई बातों मे अद्वितीय है। इसकी विचित्रता और महानता की सबसे बडी बात यह है कि यह मन्दिर एक ज्वालामुखी पर्वत पर बना हुआ है।

ज्वालामुखी पर्वत पर एक मन्दिर का निर्माण, वह भी कोई मामूली साधारण नहीं एक भव्य विशाल इमारत का निर्माण कितने आश्चर्य की बात है, आप इसका अनुमान लगा सकते हैं। रात्रि के अधकार में उस आग उगलने वाले पहाड से निकलती चिनगारियों से इस मन्दिर मे दिव्य प्रकाश फैल जाता है। रात में इस मन्दिर की शोभा अपूर्व हो जाती है। उस समय के दृश्य को देखकर हृदय मे उल्लास हिलोरे लेने लगता है।

इस मन्दिर के निर्माण काल के सम्बन्ध में कई प्रकार के भ्रम फैले हुए हैं इस मन्दिर मे जो देवताओ की प्रतिमाए प्रतिष्ठित की गई है वे आर्यो

रेस्ट नगर का देव-मन्दिर

ससार के हर हिस्से में वहा की प्राचीन कला-कृतियो की कोई न कोई निशानी देखने को मिलती है। उन्हे देखकर हम सहज ही यह अनुमान लगा सकते है, कि प्राचीन कालीन मे संसार में रहने वाले लोग आजकल के लोगो से कई बातों में बहुत आगे वढ-चढे हुए थे। पिछले पृष्ठो में हमे लोगो के जिस ढंग से निर्मित मानव निर्माणो का चित्रण देखने को मिला है, उन्हे देखकर आज के वैज्ञानिक युग के वडे-बडे विज्ञान-पंडितों का मस्तिष्क भी चक्कर खाने लग जाता है। प्राचीन रूसी गणतत्र के कुछ हिस्सो में आज भी उसकी प्राचीनतम कला-कृतियो के अनेक नमूने देखने को मिलते है। उनमे रेस्ट नगर का देव मन्दिर ससार मे आश्चर्य जनक मानवी निर्माणों में अपना प्रमुख स्थान रखता है।

प्राचीन रूसी गणराज्य में केस्पियन नाम का एक प्रान्तर भाग है। इसी प्रान्तर भाग में रेस्ट का प्राचीन नगर बसा हुआ है। यहीं वह प्राचीन देव मन्दिर है, जिसका उल्लेख हम यहाॅ पर कर रहे हैं। वनावट, सौंदर्य एव अद्भुत मानवी कला का यह मन्दिर जीवत उदाहरण है। यह मन्दिर अत्यन्त ही प्राचीन है, परन्तु दुर्भाग्यवश उसमें प्राचीनता के चिन्ह अव वर्तमान नहीं रहे हैं। समय-समय पर इस मन्दिर की मरम्मत होती रही है जिसके कारण धीरे-धीरे प्राचीनता का इसमे से लोप होता गया है। कहते हैं कि काफी समय पूर्व जव रूस मे जारशाही की हुकूमत थी उस समय इस मन्दिर के भीतरी भाग को खुदवाने की चेष्टा की गई थी, परन्तु खुदाई करने वालो को सफलता नहीं मिली। इस कार्य से मन्दिर के आन्तरिक सौन्दर्य मे कुछ खरावी आ गई उसके बाद भी कई बार इसकी म आदि र वायी गयी जिसके रूप इसकी प्राचीनता धीरे धीरे हो ती गई

पश्चिम के राष्ट्रो ने इस मन्दिर को देखकर जो जिज्ञासा प्रकट की थी, उससे यह स्पष्ट है कि वास्तव में यह मन्दिर बनावट आदि को लेकर विश्व में अपना विशिष्ट स्थान एवं उदाहरण रखता है। उन्होंने कहा है, "ऐसे स्थान पर पर्वत के शिखर पर इतना, विशाल, भव्य, सुन्दर तथा शक्तिशाली इमारत का खडा किया जाना, जो सैकडो हजारों वर्षो पश्चात भी उसी शान मे खडी है, साधारण मनुष्य के मस्तिष्क का कार्य नही है। निश्चय ही किसी अद्वितीय मस्तिष्क के कारीगर की ही यह कृति है।"

रेस्ट नगर के इस देव मन्दिर की ऊँचाई 140 फीट है। मन्दिर के सभा मडप मे बीस फीट की ऊँचाई पर मोटे-मोटे लोहे की छडो मे एक [illegible] सा घटा लटक रहा है। उसी घंटे पर एक तरफ पॉच पंक्तियों मे एक लेख खुदा हुआ है। लेख की प्रत्येक पंक्ति में उन्नीस अक्षर है। पर उन अक्षरों की लिखावट का ठीक-ठीक पता नही चल सका है। मन्दिर के चारों तरफ [illegible] चारदीवारी बनी हुई है। चारदीवारी मन्दिर का पुराना हिस्सा है। कहते [illegible] आज उस मन्दिर के द्वार के किवाड की लकडी ऐसी हो गई है कि [illegible] हाथ में लेकर मसल देने से मैदे की तरह चिकनी महीन हो जाती है।

इस देव मन्दिर के बहुत से हिस्सों की पिछले वर्षो मे मरम्मत [illegible] है, और इसीलिये इसका बहुत थोडा हिस्सा ही प्राचीन निर्माण कला [illegible] मे बचा हुआ है। परन्तु जो कुछ भी बचा हुआ भाग वर्तमान मे है वह [illegible] बात का पक्का सबूत है कि जब यह मन्दिर बना होगा, तो निश्चय ही [illegible] ढग का अकेला और अनूठा रहा होगा। वैसे तो आज भी संसार के [illegible] हिस्सो में कई आश्चर्यजनक देव मन्दिर हैं, और उनके निर्माण [illegible] कला-कारी का उद्घोष किया गया है, परन्तु रेसट का यह देव मन्दिर [illegible] बातो मे अद्वितीय है। इसकी विचित्रता और महानता की [illegible] है कि यह मन्दिर एक ज्वालामुखी पर्वत पर बना हुआ है।

ज्वालामुखी पर्वत पर एक मन्दिर का निर्माण, वह भी [illegible] साधारण नहीं एक भव्य विशाल इमारत का निर्माण [illegible] है, आप इसका अनुमान लगा सकते हैं। रात्रि के [illegible] उगलने वाले पहाड से निकलती चिनगारियों से इस मन्दिर [illegible] फैल जाता है। रात में इस मन्दिर की शोभा अपूर्व हो जाती है। [illegible] दृश्य को देखकर हृदय मे उल्लास हिलोरे लेने लगता है।

इस मन्दिर के निर्माण काल के सम्बन्ध मे कई प्रकार के [illegible] हुए है इस मन्दिर मे जो देवताओ की प्रतिमाए [illegible]

रेस्ट नगर का देव-मन्दिर

ससार के हर हिस्से मे वहा की प्राचीन कला-कृतियो की कोई न कोई निशानी देखने को मिलती है। उन्हे देखकर हम सहज ही यह अनुमान लगा सकते है, कि प्राचीन कालीन मे संसार में रहने वाले लोग आजकल के लोगों से कई बातो मे बहुत आगे बढ-चढे हुए थे। पिछले पृष्ठो में हमे लोगो के जिस ढग से निर्मित मानव निर्माणों का चित्रण देखने को मिला है, उन्हे देखकर आज के वैज्ञानिक युग के बडे-बडे विज्ञान-पंडितो का मस्तिष्क भी चक्कर खाने लग जाता है। प्राचीन रूसी गणतत्र के कुछ हिस्सों मे आज भी उसकी प्राचीनतम कला-कृतियो के अनेक नमूने देखने को मिलते है। उनमे रेस्ट नगर का देव मन्दिर ससार मे आश्चर्य जनक मानवी निर्माणों मे अपना प्रमुख स्थान रखता है।

प्राचीन रूसी गणराज्य मे केस्पियन नाम का एक प्रान्तर भाग है। इसी प्रान्तर भाग में रेस्ट का प्राचीन नगर बसा हुआ है। यही वह प्राचीन देव मन्दिर है, जिसका उल्लेख हम यहॉ पर कर रहे है। बनावट, सौंदर्य एवं अद्भुत मानवी कला का यह मन्दिर जीवत उदाहरण है। यह मन्दिर अत्यन्त ही प्राचीन है, परन्तु दुर्भाग्यवश उसमे प्राचीनता के चिन्ह अब वर्तमान नही रहे है। समय-समय पर इस मन्दिर की मरम्मत होती रही है जिसके कारण धीरे-धीरे प्राचीनता का इसमे से लोप होता गया है। कहते हैं कि काफी समय पूर्व जब रूस मे जारशाही की हुकूमत थी उस समय इस मन्दिर के भीतरी भाग को खुदवाने की चेष्टा की गई थी, परन्तु खुदाई करने वालो को सफलता नही मिली। इस कार्य से मन्दिर के आन्तरिक सौन्दर्य मे कुछ खराबी आ गई उर के बाद भी कई बार इसकी म आदि करायी गयी जिसके

पश्चिम के राष्ट्रो ने इस मन्दिर को देखकर जो जिज्ञासा प्रकट की थी, उससे यह स्पष्ट है कि वास्तव मे यह मन्दिर बनावट आदि को लेकर विश्व मे अपना विशिष्ट स्थान एव उदाहरण रखता है। उन्होने कहा है, "ऐसे स्थान पर पर्वत के शिखर पर इतना, विशाल, भव्य, सुन्दर तथा शक्तिशाली इमारत का खडा किया जाना, जो सैकडो हजारो वर्षो पश्चात् भी उसी शान मे खडी है, साधारण मनुष्य के मस्तिष्क का कार्य नहीं है। निश्चय ही किसी अद्वितीय मस्तिष्क के कारीगर की ही यह कृति है।"

रेस्ट नगर के इस देव मन्दिर की ऊँचाई 140 फीट है। मन्दिर के सभा मडप मे बीस फीट की ऊँचाई पर मोटे-मोटे लोहे की छडों में एक बडा सा घटा लटक रहा है। उसी घंटे पर एक तरफ पॉच पक्तियो मे एक लेख खुदा हुआ है। लेख की प्रत्येक पंक्ति में उन्नीस अक्षर है। पर उन अक्षरों की लिखावट का ठीक-ठीक पता नही चल सका है। मन्दिर के चारों तरफ एक चारदीवारी बनी हुई है। चारदीवारी मन्दिर का पुराना हिस्सा है। कहते हैं कि आज उस मन्दिर के द्वार के किवाड की लकड़ी ऐसी हो गई है कि जरा सा हाथ में लेकर मसल देने से मैदे की तरह चिकनी महीन हो जाती है।

इस देव मन्दिर के बहुत से हिस्सों की पिछले वर्षो में मरम्मत हुई है, और इसीलिये इसका बहुत थोडा हिस्सा ही प्राचीन निर्माण कला की याद मे बचा हुआ है। परन्तु जो कुछ भी बचा हुआ भाग वर्तमान में है, वह इस बात का पक्का सबूत है कि जब यह मन्दिर बना होगा, तो निश्चय ही अपने ढग का अकेला और अनूठा रहा होगा। वैसे तो आज भीससार के विभिन्न हिस्सों में कई आश्चर्यजनक देव मन्दिर है, और उनके निर्माण मे भी अद्वितीय कला-कारी का उद्घोष किया गया है, परन्तु रेस्ट का यह देव मन्दिर कई बातो मे अद्वितीय है। इसकी विचित्रता और महानता की सबसे बडी बात यह है कि यह मन्दिर एक ज्वालामुखी पर्वत पर बना हुआ है।

ज्वालामुखी पर्वत पर एक मन्दिर का निर्माण, वह भी कोई मामूली साधारण नही एक भव्य विशाल इमारत का निर्माण कितने आश्चर्य की बात है, आप इसका अनुमान लगा सकते है। रात्रि के अंधकार मे उस आग उगलने वाले पहाड से निकलती चिनगारियों से इस मन्दिर मे दिव्य प्रकाश फैल जाता है। रात मे इस मन्दिर की शोभा अपूर्व हो जाती है। उस समय के दृश्य को देखकर हृदय मे उल्लास हिलोरे लेने लगता है।

इस मन्दिर के निर्माण काल के सम्बन्ध में कई प्रकार के भ्रम फैले हुए है इस मन्दिर मे जो देवताओ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई है व आर्यो

की देव-पतिमाओ की भांति ही हैं। मन्दिर के भीतरी तथा वाहरी दीवारों पर अनेक भिन्न-भिन्न भाव-अभिव्यजना मे देवताओ की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उन मूर्तियो की बनावट तथा आकृति आर्यों की देव-मूर्तियों के समान ही है। मन्दिर के मध्य भाग में एक पिण्ड है। लोगों का कहना है कि भारतवासियों के शिव-पिण्ड की भाति ही यह पिण्ड है। बनावट आदि बहुत कुछ हिन्दुओं के शिव-पिण्ड से मिलती जुलती है।

इनके अतिरिक्त मन्दिर मे विष्णु के चौबीसों अवतारो—कच्छप, मत्स्य आदि की मूर्तियाँ भी वहाँ दीवारों पर चित्रित हैं। साथ ही गणपति, भैरव तथा दस-महा-देवियों का भी चित्रण स्पष्ट है। इससे इस वात की पुष्टि होती है कि किसी जमाने में आर्यों ने ही इस मन्दिर का प्रतिष्ठान किया था। मन्दिर के सिंह द्वार पर एक पत्थर जडा हुआ है। उस पत्थर पर भी घटे जैसी लिखावट से कुछ पक्तियो में कोई लेख खुदा हुआ है। उस पत्थर में निर्माण वर्ष सूचक सख्या भी खुदी हुई है। परन्तु इन लिखावटों का भारत की किसी भी भाषा से मेल नही खाता है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक मत है कि महाभारत प्रसिद्ध गाण्डीव धारी अर्जुन ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव मे एवं इन अभिलेखों के नहीं पढे जा सकने के कारण अभी तक इस बात का पूर्ण रूपेण निर्णय नहीं हो पाया है कि वास्तव मे यह मन्दिर कब बना और इसका निर्माण कराने वाला कौन था। इसमें सदेह नहीं कि मन्दिर अत्यन्त ही प्राचीन समय का बना हुआ है।

एक वार अमरीका निवासी एक पुरा तत्ववेत्ता ने इस मन्दिर को देखने के लिये अपनी यात्रा की थी। इसे देखकर वे बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होंने अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा कि—"इस मन्दिर की बनावट अत्यन्त ही प्राचीन है। समय और साधन का ख्याल करके हमे यह कहने के लिए वाध्य होना पडता है कि हजारों-हजारो वर्ष पूर्व भी जिस रचना कौशल का परिचय इसके बनाने वालों ने दिया है, वह आज कल के वडे से वडे कारीगर के लिए भी सभव नही है। इस मन्दिर में भारतवर्ष के ब्राह्मण द्वारा पूजा कराई जाती है। पूजा की विधिया भी भारत की पूजा-विधियो से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। मन्दिर मे गृहस्थ ब्राह्मण पुजारी नही रह पाता। केवल ब्रह्मचारी ही उस मन्दिर मे रहते है और पूजा करते हैं। इस मन्दिर का सारा खर्च इसी इलाके के धनीमानी व्यक्ति वहन करते है। लगातार यहाँ के लोगों को इसम पूजा करने के लिये भारतवर्ष स ब्राह्मण को बुलाना पडता है

अमरीकी पुरा तत्वज्ञानी का यह कथन उन दिनों का है जब कि रूस मे राजवर्ग का शासन था, जारशाही का बोल-बाला था। परन्तु रूस मे बोलशेविक क्रान्ति के पश्चात् वहाँ गणतंत्र राज्य पद्धति कायम हुई। इसके पश्चात् सरकार की तरफ से इस मन्दिर के खर्च अथवा पूजा आदि की कोई व्यवस्था नहीं रही। सभवत मन्दिर के पुजारी रेस्ट के समीप के निवासियो पर इसके लिये निर्भर करते रहे है। परन्तु इस हेर-फेर से इस मन्दिर की महानता में कोई विशेष अन्तर नही पड़ा है। उसे देखने के लिए आज भी सैकड़ो की सख्या में लोग पहुचते रहते हैं। उसे देखते हैं और उसकी मुक्त कठ से प्रशसा करते है।

मन्दिर मे प्रतिष्ठित मूर्तियों एवं स्वयं मन्दिर के निर्माण से इस बात की पुष्टि होती है कि अवश्य ही भारतीयो के द्वारा ही विश्व के इस आश्चर्यजनक भवन का निर्माण हुआ है। प्राचीन काल मे सभ्यता, कला एव सस्कृति मे भारत ने ससार का नेतृत्व किया था, उसी के प्रतीक स्वरूप विभिन्न स्थानो पर भारतीय सम्राटो और नरेशो ने ससार के भिन्न-भिन्न हिस्सो मे भारतीय देवी-देवताओ के मन्दिर आदि बनवाये होगे। आज भी अर्जेन्टाइना के सूर्य मन्दिर को देखकर इसीबात की पुष्टि होती है कि वह भी भारतीयो द्वारा ही बनाया गया था। किसी जमाने में उन हिस्सो पर आर्यो का शासन था। कुछ विद्वान तो उस मन्दिर को भी अर्जुन का बनवाया हुआ ही बताते है।

मलायाद्वीप के कई हिस्सो मे भी कई विचित्र मन्दिर बने हुए हैं जिनमे आर्यो के देवताओ की मूर्तियां स्थापित है। जावा द्वीप मे चाडीसेज्आ नामक एक जगह है। कहते है कि उस स्थान पर प्राचीन काल मे एक हजार देव मन्दिर थे। समयान्तर मे कितने ही ध्वस्त हो गये। अब भी उस स्थान पर 296 देवमन्दिरो के चिन्ह पाये जाते है। पेडो और जंगलो से मन्दिर के सब अवशेष ढके हुए है। उन अवशेषो को देखकर ही बडे-बडे कारीगरो का सिर चकराने लगता है। उनके निर्माण में इस कुशलता का परिचय दिया गया है कि उन्हे देखने पर प्राचीन काल के कारीगरों की बुद्धि और रचना कौशल पर बड़ा ही आश्चर्य होता है।

इसी प्रकार बर्मा (म्यामार) आदि मे भी कई आश्चर्यजनक प्राचीन मन्दिर हैं जिनकी कारीगरी को देखकर आश्चर्य होता है। अन्य देशो में भी ऐसे अनेक आश्चर्यजनक प्राचीन मन्दिर हैं, जिनमे आर्यो के देवी-देवताओं की मूर्तियां प्रतिष्ठि त है

को देव-प्रतिमाओ की भाति ही है। मन्दिर के भीतरी तथा बाहरी दीवारों पर अनेक भिन्न-भिन्न भाव-अभिव्यजना मे देवताओ की मूर्तियॉ बनी हुई है। उन मूर्तियो की बनावट तथा आकृति आर्यो की देव-मूर्तियो के समान ही हैं। मन्दिर के मध्य भाग मे एक पिण्ड है। लोगो का कहना है कि भारतवासियों के शिव-पिण्ड की भाति ही यह पिण्ड है। बनावट आदि बहुत कुछ हिन्दुओ के शिव-पिण्ड से मिलती जुलती है।

इनके अतिरिक्त मन्दिर मे विष्णु के चौबीसो अवतारो—कच्छप, मत्स्य आदि की मूर्तियॉ भी वहॉ दीवारो पर चित्रित हैं। साथ ही गणपति, भैरव तथा दस-महा-देवियो का भी चित्रण स्पष्ट है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि किसी जमाने में आर्यो ने ही इस मन्दिर का प्रतिष्ठान किया था। मन्दिर के सिंह द्वार पर एक पत्थर जड़ा हुआ है। उस पत्थर पर भी घटे जैसी लिखावट से कुछ पक्तियों में कोई लेख खुदा हुआ है। उस पत्थर में निर्माण वर्ष सूचक सख्या भी खुदी हुई है। परन्तु इन लिखावटों का भारत की किसी भी भाषा से मेल नही खाता है। कुछ विद्वानो का तो यहॉ तक मत है कि महाभारत प्रसिद्ध गाण्डीव धारी अर्जुन ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। परन्तु ऐतिहासिक तथ्यो के अभाव में एव इन अभिलेखो के नहीं पढे जा सकने के कारण अभी तक इस बात का पूर्ण रूपेण निर्णय नहीं हो पाया है कि वास्तव मे यह मन्दिर कब बना और इसका निर्माण कराने वाला कौन था। इसमें सदेह नही कि मन्दिर अत्यन्त ही प्राचीन समय का बना हुआ है।

एक बार अमरीका निवासी एक पुरा तत्ववेत्ता ने इस मन्दिर को देखने के लिये अपनी यात्रा की थी। इसे देखकर वे बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होने अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा कि—"इस मन्दिर की बनावट अत्यन्त ही प्राचीन है। समय और साधन का ख्याल करके हमें यह कहने के लिए बाध्य होना पडता है कि हजारों-हजारों वर्ष पूर्व भी जिस रचना कौशल का परिचय इसके बनाने वालो ने दिया है, वह आज कल के बडे से बडे कारीगर के लिए भी सभव नही है। इस मन्दिर मे भारतवर्ष के ब्राह्मण द्वारा पूजा कराई जाती है। पूजा की विधियां भी भारत की पूजा-विधियो से बहुत कुछ मिलती जुलती है। मन्दिर मे गृहस्थ ब्राह्मण पुजारी नहीं रह पाता। केवल ब्रह्मचारी ही उस मन्दिर मे रहते है और पूजा करते है। इस मन्दिर का सारा खर्च इसी इलाके के धनीमानी व्यक्ति वहन करते है। लगातार यहॉ के लोगो को इसमे पूजा करा के लिये भ रतवर्ष से ब्राह्मण को बुला ा प ता है

अमरीकी पुरा तत्वज्ञानी का यह कथन उन दिनों का है जब कि रूस में राजवर्ग का शासन था, जारशाही का बोल-बाला था। परन्तु रूस मे वोलशेविक क्रान्ति के पश्चात् वहाँ गणतत्र राज्य पद्धति कायम हुई। इसके पश्चात् सरकार की तरफ से इस मन्दिर के खर्च अथवा पूजा आदि की कोई व्यवस्था नही रही। सभवत मन्दिर के पुजारी रेस्ट के समीप के निवासियो पर इसके लिये निर्भर करते रहे है। परन्तु इस हेर-फेर से इस मन्दिर की महानता मे कोई विशेष अन्तर नही पड़ा है। उसे देखने के लिए आज भी सैकडो की सख्या में लोग पहुचते रहते है। उसे देखते है और उसकी मुक्त कठ से प्रशसा करते है।

मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्तियों एवं स्वयं मन्दिर के निर्माण से इस बात की पुष्टि होती है कि अवश्य ही भारतीयो के द्वारा ही विश्व के इस आश्चर्यजनक भवन का निर्माण हुआ है। प्राचीन काल में सभ्यता, कला एव सस्कृति मे भारत ने ससार का नेतृत्व किया था, उसी के प्रतीक स्वरूप विभिन्न स्थानो पर भारतीय सम्राटो और नरेशा ने ससार के भिन्न-भिन्न हिस्सो मे भारतीय देवी-देवताओं के मन्दिर आदि बनवाये होगे। आज भी अर्जेन्टाइना के सूर्य मन्दिर को देखकर इसीबात की पुष्टि होती है कि वह भी भारतीयो द्वारा ही बनाया गया था। किसी जमाने मे उन हिस्सो पर आर्यो का शासन था। कुछ विद्वान तो उस मन्दिर को भी अर्जुन का बनवाया हुआ ही बताते है।

मलायाद्वीप के कई हिस्सो मे भी कई विचित्र मन्दिर बने हुए है जिनमे आर्यो के देवताओ की मूर्तिया स्थापित है। जावा द्वीप मे चाडीसेव्आ नामक एक जगह है। कहते है कि उस स्थान पर प्राचीन काल में एक हजार देव मन्दिर थे। समयान्तर मे कितने ही ध्वस्त हो गये। अब भी उस स्थान पर 296 देवमन्दिरों के चिन्ह पाये जाते हैं। पेडों और जंगलो से मन्दिर के सब अवशेष ढके हुए हैं। उन अवशेषों को देखकर ही बडे-बड़े कारीगरो का सिर चकराने लगता है। उनके निर्माण में इस कुशलता का परिचय दिया गया है कि उन्हे देखने पर प्राचीन काल के कारीगरो की बुद्धि और रचना कौशल पर बड़ा ही आश्चर्य होता है।

इसी प्रकार बर्मा (म्यामांर) आदि में भी कई आश्चर्यजनक प्राचीन मन्दिर है जिनकी कारीगरी को देखकर आश्चर्य होता है। अन्य देशों में भी ऐसे अनेक आश्चर्यजनक प्राचीन मन्दिर है, जिनमें आर्यो के देवी-देवताओं की मूर्तिया प्रतिष्ठि । है

परन्तु इन सभी मन्दिरों में रेस्ट का देव मन्दिर जिसे हम अपनी धारणा के अनुसार 'शिव मन्दिर' भी कह सकते हैं, ससार के आश्चर्यजनक निर्माणो में से एक है। इस मन्दिर के बनाने मे खर्च का अनुमान लगाते हुये एक जर्मन विद्वान कारीगर ने कहा था, "आजकल के उपलब्ध साधनो के होते हुये यदि कही किसी समतल भूमि पर ऐसे मन्दिर का निर्माण हो, तो लगभग तीन करोड रूपये व्यय होंगे। इस पर यह मंदिर तो ज्वालामुखी पर्वत पर बना हुआ है। आजकल के वैज्ञानिक यत्रों के होते हुये भी उस ज्वालामुखी पहाड पर कोई इमारत खडी करना सरल कार्य नहीं है।"

रेस्ट की भूमि मे इस मन्दिर के सम्बन्ध में कई तरह की कथाएँ प्रचलित हैं। परन्तु कहीं भी इस बात का पता नहीं चलता कि इस मन्दिर का निर्माण किसने करवाया था। इस खोज के अभाव में हम इसके प्रारम्भिक वैभव की जानकारी से वंचित रह जाते हैं औरहमें इतने ही से सन्तोष कर लेना पडता है कि यह मन्दिर रचना-कौशल का अद्वितीय जीवित उदाहरण है।

रेस्ट के इस देव मन्दिर के अतिरिक्त रूस में एक और भी आश्चर्यजनक मानवी-निर्माण की वस्तु है जो आधुनिक ससार में अनोखी है। वह है 'क्रेमलिन' का राज भवन। यदि इस समय आधुनिक रचना कौशल को श्रेणीबद्ध किया जाय तो निस्संदेह ही मास्को स्थिति 'क्रेमलिन गर्वोन्नत राज-भवन' विश्व में सर्वप्रथम स्थान ग्रहण करेगा। इस युग मे भी संसार मे अनेक अद्भुद् विशाल-विस्तृत इमारतो का निर्माण हुआ है, परन्तु कोई भी इमारत क्रेमलिन की विशालता और भव्यता की बराबरी नही कर सकती। अमेरिका जो ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं वाला नगर कहा जाता है और जहाँ संसार प्रसिद्ध एक से एक सुन्दर, विशाल और ऊँचे भवन हैं, वह भी 'केमलिन' की इमारत की श्रेणी मे नहीं पहुंच पाया।

'क्रेमलिन' की यह इमारत रचना कौशल के लिये तो प्रसिद्ध है ही साथ ही इसकी दीवार के हर पत्थर में रूसी क्राति का इतिहास लिखा हुआ है। इस कारण से यह इमारत अपनी बराबरी नहीं रखती। रूस में बोल सेविक क्रांति के पूर्व वहाँ साम्राज्यवाद का विस्तार था। जार की हुकूमत थी, जिस हुकूमत मे प्रजा की भलाई के लिये कोई भी साधन नहीं थे। शाही घराने के लोग-जार, जरीना, ड्यूक, और डची सब इसी क्रेमलिन की इमारत में रहते थे क्राति की स के पश्चात केमनि ा के इसी भवज मे राज घराने के

सैकड़ो लोगो का, जिनमें रूस के बादशाह जार तथा अन्य लोग शामिल थे, कत्ले आम हुआ था।

उसके पश्चात् तो बराबर ही पश्चिमी राष्ट्रों की आँखें क्रेमलिन की भयानक इमारत पर लगी रहती है। विश्व में साम्यवाद के प्रसार की दृष्टि से पश्चिम के राष्ट्र इसे अत्यन्त ही शक्तिशाली स्थान समझते रहे थे। कुछ समय पूर्व तक इस इमारत में सोवियत साम्यवादी सरकार का निवास था। उस समय की रूस की एक मात्र राजनीतिक पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी की बैठक भी इसी इमारत में होती थी।

रूस के अन्य भागों में और भी कितनी ही प्राचीन एवं अर्वाचीन भव्य इमारतें है, परन्तु उनमें पौराणिकता तथा रचना-कौशल के ख्याल से 'रसट का देव मन्दिर' सर्वोत्तम है और संसार की आश्चर्यजनक मानवी-कृतियो में इसकी गणना है। आज इस इमारत की देख-रेख, इसमें पूजा-उपासन आदि सभी कार्य वहीं के समीप के लोग करते है।

❑❑❑

गोल्डेन-गेट-ब्रिज–
सेनफ्रान्सिसको का झूलता हुआ पुल

सभ्यता के आदिकाल से ही आदमी ने अपने आराम के लिये तरह-तरह के सुंन्दर-पदार्थों का अन्वेषण किया है। अपने लिये वडे-बडे आलीशान महल बनवाये हैं। सुन्दर से सुन्दर भव्य मन्दिर बनवाये हैं, देवी-देवताओं की तरह-तरह की मूर्तियों आदि का निर्माण करवाया है। इसी भाँति ज्यों-ज्यो आदमी का विकास होता गया वह अधिक से अधिक आराम के साधनों को ढूंढने लगा। प्रारम्भ में वडी-बडी नदियो, झीलों आदि को पार करना उसके सामने एक विकट समस्या थी। आदमी को कहीं जाना पडता, उसके मार्ग मे कहीं कोई बडी-छोटी नदी पड़ती तो, या तो जाने वाले को उसे तैर कर पार करना पडता, अथवा यदि किश्तियाँ उपलब्ध होती तो, उसका सहारा लेना पडता। इस कठिनाई के कारण नदियों को पार करने का आसान तरीका आदमी ने ढूंढ निकाला। इस प्रकार पुलों का निर्माण होना शुरू हुआ। वहुत प्राचीन काल में तो लोग नदी के तट पर खडे वड़े-बडे वृक्षों को काट देते थे। वृक्ष नदी पर आर-पार पड जाते और आसानी से लोग इस पार से उस पार आ जा सकते थे। परन्तु वृक्षों के ऐसे पुल टिकाऊ नहीं होते थे। अकसर नदी मे जब कभी बाढ आती थी तो उसकी तीव्र धारा उन लकडियो को बहाकर दूर ले जाती थी।

पर मानव हृदय पराजित होने वाला नहीं है। उसजे देखा कि अव पेड़ों को काट कर गिरा देने से ही उसका काम नही चलने का। तब उसने नदी के दोनो तटो पर पत्थर के स्तम्भ बनाये और उस पर मजबूत लकडी के तख्ते बिछा दिये इस प्रकार एक स्थायी पुल का निर्माण हुआ धीरे धीरे

पुलो के निर्माण मे आदमी प्रगति करता गया। एक से एक सुन्दर एक से एक मजबूत पुल बनने लगे। प्रकृति द्वारा प्रस्तुत बाधाविघ्नों पर आदमी की जीत होने लगी।

इतिहास बतलाता है कि पुलो के निर्माण कौशल में सर्वप्रथम चीन देश के निवासियो ने ससार के दूसरे देशों का नेतृत्व किया। चीन केलोग रस्सियो के सहारे अपने देश की नदियो पर झूलता हुआ पुल बनाते थे। परन्तु इस प्रकार के पुलों द्वारा केवल मनुष्यो का आना जाना ही सभव होता था। एक तो ऐसे पुल दोनों किनारो पर से ढलुआ होते थे, दूसरे रस्सी मे शक्ति ही कितनी होती थी। इसलिये इन पुलो से अधिक सवारियो का आना जाना संभव नहीं था। परन्तु धीरे-धीरे चीन वालो ने प्रगति की और पत्थरो से मजबूत शक्तिशाली पुलों का निर्माण करना शुरू किया। चीन में पेचिंग नगर के पास 'मार्कोपोलो-पुल' जो कई शताब्दियों पूर्व बना था आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। इस पुल में कुल ग्यारह मेहराब हैं औरपुल के किनारे किनारे मुंडेरों पर सैकड़ो सिह की मूर्तियाँ बनी हुई है।

जो भी हो, आधुनिक युग को झूलते हुये पुलों की शैली चीन की ही देन है। पुलों के निर्माण मे बहुत प्राचीन काल में फारस में भी काफी तरक्की हुई थी। फारस ने आधुनिक युग को पुलो की एक दूसरी ही शैली प्रदान की। कहते हैं कि ईसा के जन्म से 480 वर्ष पूर्व फारस का बादशाह जेराक्सीज यूनान पर आक्रमण करने के लिये अपनी विशाल सेना लेकर चला। रास्ते मे उसे सारी सेना के साथ डार्डनल्ज का जल डमरूमध्य पार करना था। उस समय नदी में प्रवाह बड़ा तेज था। जेराक्सीज के पास पचास हजार सेना थी। उसने सोचा कि इतने सिपाही तो नाव से कई दिनों मे भी पार नहीं उतर पायेंगे। दूसरे धारा तेज होने के कारण नावों के खतरे में पड़ जाने का भी डर था। वह विचार करने लगा। थोडी देर बाद उसने आदेश दिया कि इस जल डमरूमध्य के एक तट से दूसरे तट तक नावों का बेडा-खडा कर दिया जाय। ऐसा ही हुआ और आसानी से उसके पचास हजार सैनिक उस पार उतर गये। आजकल के 'पान्टून' या 'पीपेवाले' पुल की कल्पना जेराक्सीज द्वारा नावों द्वारा निर्मित पुल से ही ली गई है।

इसी प्रकार प्राचीन काल में पुलों के निर्माण के और भी कई रोचक दृष्टान्त हमे पढ़ने को मिलते हैं। प्राचीन काल में रोम में पुल निर्माण कला की ओर लोगों की रूचि थी औररोम वालों ने काफी मजबूत और अच्छे पुल बनाये। रोम में टाइबर नदी पर आज से दो हजार वर्ष पहले का बना हुआ

मेहराबों का पुल आज भी ज्यो का त्यों खडा हुआ है। परन्तु धीरे-धीरे युग परिवर्तन के साथ ही पुल निर्माण की कला में भिन्न-भिन्न तरह का विकास होने लगा। आदमी का प्रवेश लोहे के युग मे हुआ और लोहे से उसने प्रकृति परविजय प्राप्त करना शुरू किया। अब प्रकृति मानव के सिद्धि पथ का बाधक नहीं बन सकती थी।

आधुनिक युग मे इस दिशा में सब से अधिक प्रगति अमेरिका ने की है। सर्वप्रथम 1927 ई में अमेरिका मे एक विशाल झूलते हुये पुल का निर्माण शुरू हुआ। नदी पर मेहराबों के सहारे बनने वाले पुलों में तो अन्य कई देशों मे भी बडे-बडे पुल बने है। परन्तु लटकते हुए पुलो के निर्माण मे अमेरिका ने सबसे बाजी मार ली। वहाँ एक से एक विशाल पुल बनने लगे। सर्वप्रथम अमेरिका का झूलता हुआ पुल हडसन नदी पर उत्तरी न्यू जर्सी स्थित ली के किले और मैनहाटन के बीच बना। सन् 1927 ई में इस पुल का बनना शुरू हुआ और 1931 ई में पूर्ण रूप से यह पुल बनकर तैयार हुआ। इस पुल को 'जार्ज वांशिगटन पुल' कहते हैं। कहते हैं कि इस पुल के निर्माण में 21 करोड 50 लाख रुपये खर्च हुये थे। यह पुल चार-तार के मोटे रस्सो पर झूल रहा है। इनमें से हर तार की मोटाई एक गज की है। ये चारों तार नदी पर बने स्तम्भों के ऊपर से होकर जाते हैं और इनका लगाव दोनो सिरों परबने पक्के-कुन्दों पर है। इन तारों को घटाने बढाने का काम लोहे के मोटे-मोटे वेलनो के द्वारा किया जाता है। नदी के जल सतह से पुल की ऊँचाई 253 फुट है। इस पुल की लम्बाई 3500 फीट है और मार्ग पथ 120 फीट चौडा है। मार्ग आठ हिस्सों में विभाजित है।

जार्ज वाशिंगटन पुल के निर्माण होने से पहले हडसन नदी को पार करके न्यूयार्क में काम करने के लिये आने वालों को बड़ी-वडी कठिनाईयाँ उठानी पडती थीं। न्यूजर्सी के रहने वाले जो न्यूयार्क नगर में काम करते थे, काम करने के बाद वापस अपने घरों को नही जा सकते थे। परन्तु इसके बन जाने के वाद न्यूजर्सी के निवासी काम करने के लिये आते है और आसानी से काम करने के बाद अपने-अपने घरो को वापस लौट जाते हैं। छुट्टी अथवा सप्ताह के अन्तिम दिनों पर इस पुल पर से हजारों लोगों और सवारी गाडियो का ताता देखते ही बनता है।

जब यह पुल बनकर तैयार हो गया तो सचमुच ही संसार के लिये यह एक अद्भुत चीज थी। उस समय यह संसार का सबसे बडा झूलने वाला पुल था लोगों को विश्वास था कि अब इस युग के इससे बड़े किसी

पुल का निर्माण नहीं करसकते। परन्तु विज्ञान की प्रगति को कौन जानता है। स्वयं अमेरिका वालो को ही जार्ज वाशिंगटन का पुल बना लेने के बाद संतोष नही हुआ था। लोश उससे बडे झूलते हुये पुल के निर्माण की कल्पना करने लगे। अमेरिका के इसी असन्तोष के परिणामस्वरूप संसार के सब से बडे विशाल झूलते हुये पुल 'गोल्डेन गेट ब्रिज" का निर्माण हुआ।

गोल्डेन गेट ब्रिज' जो आधुनिक संसार के आश्चर्यजनक मानव रचना कौशल का प्रतीक है। सेनफ्रान्सिस्को नगर मे स्थित है। यह संसार का सबसे बडा शक्तिशाली झूलता हुआ पुल है। हडसन नदी पर जार्ज वाशिंगटन का जो पुल है उसकी लम्बाई 3500 फीट है, परन्तु गोल्डेन गेट ब्रिज की लम्बाई 4200 फीट है। इस पुल के निर्माण में कुल 12 करोड 25 लाख रुपये खर्च हुये हैं। जार्ज वाशिंगटन पुल मे 21 करोड 50 लाख रुपये खर्च हुये थे। इसका कारण था कि उस पुल के निर्माण में इस दिशा में अमेरिका ने प्रयोगात्मक कदम उठाया था, इसलिये धन का अधिक अपव्यय हुआ था। परन्तु जब सेनफ्रान्सिस्को का गोल्डेन गेट ब्रिज बनने लगा तो उस समय तक इंजीनियरो को पूरा अनुभव हो गया था। यही कारण था कि जार्ज वाशिंगटन से काफी बडा, शक्तिशाली और लम्बा होते हुये भी इस पुल के निर्माण मे अधिक रुपये खर्च नही हुये।

सन् 1933 ई मे 'गोल्डेन गेट ब्रिज' का बनना शुरू हुआ था और इसके पूरा होने में पूरे सात वर्ष का समय लग गया था। इजिनियरों का अनुमान है कि इस पुल के बुर्जो को बनाने में जितना फौलाद व लोहा खर्च हुआ है, वह 90 रेल गाडियो में भरा जा सकता है। जिन मोटे तारो पर यह पुल झूलता हुआ बना हुआ है उन मोटे तारो में से प्रत्येक तार 29572 पतले तारों की बनावट से तैयार हुआ है। इस पुल में जो बुर्ज हैं उनमें से प्रत्येक बुर्ज की ऊँचाई 746 फीट है। कहते हैं जिन मोटे बनाये गये तारो पर यह विशाल पुल झूल रहा है वे इतने मजबूत है कि इस काल के तीन बडे जहाजो, क्वीन मेरी, नारमंडी और रैक्स का भार एक ही साथ संभाल सकते हैं। आर-पार के बुर्जो की लम्बाई इतनी है कि इन तीनो जहाजों को यदि पुल के नीचे एक कतार में खडा कर दिया जावे तो भी चौथाई मील की दूरी शेष रह जायेगी।

जब पूर्णरूप से यह पुल तैयार भी नही हो पाया था कि इस पर एक दुर्घटना का साया पड़ा। 17 फरवरी, 1937 ई को कोई कंटीली वस्तु पुल पर गिर पड़ी और नीचे के रक्षा जाल को फाड़ती हुई पुल क नीचे पहुच

मेहराबों का पुल आज भी ज्यो का त्यों खडा हुआ है। परन्तु धीरे-धीरे युग परिवर्तन के साथ ही पुल निर्माण की कला में भिन्न-भिन्न तरह का विकास होने लगा। आदमी का प्रवेश लोहे के युग में हुआ और लोहे से उसने प्रकृति परविजय प्राप्त करना शुरू किया। अब प्रकृति मानव के सिद्धि पथ का बाधक नहीं बन सकती थी।

आधुनिक युग मे इस दिशा मे सब से अधिक प्रगति अमेरिका ने की है। सर्वप्रथम 1927 ई में अमेरिका में एक विशाल झूलते हुये पुल का निर्माण शुरू हुआ। नदी पर मेहरावों के सहारे बनने वाले पुलों मे तो अन्य कई देशों में भी बडे-बडे पुल बने है। परन्तु लटकते हुए पुलों के निर्माण मे अमेरिका ने सबसे बाजी मार ली। वहाँ एक से एक विशाल पुल बनने लगे। सर्वप्रथम अमेरिका का झूलता हुआ पुल हडसन नदी पर उत्तरी न्यू जर्सी स्थित ली के किले और मैनहाटन के बीच बना। सन् 1927 ई मे इस पुल का बनना शुरू हुआ और 1931 ई. में पूर्ण रूप से यह पुल बनकर तैयार हुआ। इस पुल को 'जार्ज वांशिगटन पुल' कहते हैं। कहते हैं कि इस पुल के निर्माण में 21 करोड 50 लाख रुपये खर्च हुये थे। यह पुल चार-तार के मोटे रस्सो पर झूल रहा है। इनमें से हर तार की मोटाई एक गज की है। ये चारों तार नदी पर बने स्तम्भों के ऊपर से होकर जाते हैं और इनका लगाव दोनों सिरों परबने पक्के-कुन्दों पर है। इन तारों को घटाने बढ़ाने का काम लोहे के मोटे-मोटे बेलनों के द्वारा किया जाता है। नदी के जल सतह से पुल की ऊँचाई 253 फुट है। इस पुल की लम्बाई 3500 फीट है और मार्ग पथ 120 फीट चौडा है। मार्ग आट हिस्सों में विभाजित है।

जार्ज वाशिंगटन पुल के निर्माण होने से पहले हडसन नदी को पार करके न्यूयार्क में काम करने के लिये आने वालों को बड़ी-बडी कठिनाईयाँ उठानी पडती थीं। न्यूजर्सी के रहने वाले जो न्यूयार्क नगर में काम करते थे, काम करने के बाद वापस अपने घरों को नहीं जा सकते थे। परन्तु इसके बन जाने के बाद न्यूजर्सी के निवासी काम करने के लिये आते हैं और आसानी से काम करने के बाद अपने-अपने घरों को वापस लौट जाते हैं। छुट्टी अथवा सप्ताह के अन्तिम दिनों पर इस पुल पर से हजारों लोगों और सवारी गाडियो का तांता देखते ही बनता है।

जब यह पुल बनकर तैयार हो गया तो सचमुच ही संसार के लिये यह एक अद्भुत चीज थी। उस समय यह संसार का सबसे बड़ा झूलने वाला पुल था लोगों को विश्वास था कि अब इस युग के इससे बड़े किसी

पुल का निर्माण नहीं करसकते। परन्तु विज्ञान की प्रगति को कौन जानता है। स्वयं अमेरिका वालों को ही जार्ज वाशिंगटन का पुल बना लेने के बाद संतोष नहीं हुआ था। लोग उससे बडे झूलते हुये पुल के निर्माण की कल्पना करने लगे। अमेरिका के इसी असन्तोष के परिणामस्वरूप संसार के सब से बडे विशाल झूलते हुये पुल ''गोल्डेन गेट ब्रिज'' का निर्माण हुआ।

'गोल्डेन गेट ब्रिज' जो आधुनिक संसार के आश्चर्यजनक मानव रचना कौशल का प्रतीक है। सेनफ्रान्सिस्को नगर में स्थित है। यह संसार का सबसे बडा शक्तिशाली झूलता हुआ पुल है। हडसन नदी पर जार्ज वाशिंगटन का जो पुल है उसकी लम्बाई 3500 फीट है, परन्तु गोल्डेन गेट ब्रिज की लम्बाई 4200 फीट है। इस पुल के निर्माण मे कुल 12 करोड 25 लाख रुपये खर्च हुये हैं। जार्ज वाशिंगटन पुल मे 21 करोड़ 50 लाख रुपये खर्च हुये थे। इसका कारण था कि उस पुल के निर्माण मे इस दिशा में अमेरिका ने प्रयोगात्मक कदम उठाया था, इसलिये धन का अधिक अपव्यय हुआ था। परन्तु जब सेनफ्रान्सिस्को का गोल्डेन गेट ब्रिज बनने लगा तो उस समय तक इजीनियरो को पूरा अनुभव हो गया था। यही कारण था कि जार्ज वाशिंगटन से काफी बड़ा, शक्तिशाली और लम्बा होते हुये भी इस पुल के निर्माण में अधिक रुपये खर्च नहीं हुये।

सन् 1933 ई में 'गोल्डेन गेट ब्रिज' का बनना शुरू हुआ था और इसके पूरा होने में पूरे सात वर्ष का समय लग गया था। इजिनियरो का अनुमान है कि इस पुल के बुर्जो को बनाने में जितना फौलाद व लोहा खर्च हुआ है, वह 90 रेल गाड़ियों मे भरा जा सकता है। जिन मोटे तारों पर यह पुल झूलता हुआ बना हुआ है उन मोटे तारो में से प्रत्येक तार 29572 पतले तारो की बनावट से तैयार हुआ है। इस पुल में जो बुर्ज है उनमें से प्रत्येक बुर्ज की ऊँचाई 746 फीट है। कहते हैं जिन मोटे बनाये गये तारों पर यह विशाल पुल झूल रहा है वे इतने मजबूत हैं कि इस काल के तीन बडे जहाजो, क्वीन मेरी, नारमंडी और रैक्स का भार एक ही साथ संभाल सकते हैं। आर-पार के बुर्जो की लम्बाई इतनी है कि इन तीनों जहाजो को यदि पुल के नीचे एक कतार मे खडा कर दिया जावे तो भी चौथाई मील की दूरी शेष रह जायेगी।

जब पूर्णरूप से यह पुल तैयार भी नहीं हो पाया था कि इस पर एक दुर्घटना का साया पड़ा। 17 फरवरी, 1937 ई को कोई कंटीली वस्तु पुल पर गिर पडी और नीचे के रक्षा जाल को फाड़ती हुई पुल के नीचे पहुँच

गई, जिसके परिणामस्वरूप 10 आदमी घटनास्थल पर ही मारे गये। नीचे का रक्षा जाल इसीलिये बना था कि कोई आदमी गिरने पर उसी में फँस जाये। पुल के बनकर तैयार होते-होते भी एक आदमी की मृत्यु हो गई थी।

'गोल्डेन गेट-ब्रिज' के नीचे से होकर पैसेफिक महासागर का पानी ऑकलैण्ड की खाडी में गिरता है। इस पुल की विचित्रता एवं महानता इस बात मे नहीं कि इसकी लम्बाई 4200 फीट है, वल्कि इसलिये है कि यह पुल मोटे-मोटे केबिलों (तार के रस्सो) पर झूल रहा है। इस पुल की मेहराब जितनी लम्बी है, संसार मे और किसी पुल की मेहराब इतनी लंबी नहीं है। पहले ही बताया जा चुका है कि दोनो तरफ स्थापित दो स्तम्भ इसके केबिलो को संभाले हुए है। तार के वे रस्से जिनके सहारे इसकी गच लटकती है, वे 80 हजार मील लम्बे तारो से बने हुए हैं। स्पष्ट है कि विषुवत रेखा पर ये तार पृथ्वी के चारो ओर चार-पांच बार लपेटे जा सकते हैं। कहते है 61 साधारण रस्सो को बंटकर केवल रस्सा तैयार किया गया है और उस साधारण रस्से में 27572 बारीक तार बंटकर लगाये गये हैं।

इस प्रकार के झूलने वाले पुलो पर ऑधी-तूफान का गहरा असर पडने का खतरा रहता है। इसमे सब से बडा खतरा इसलिये होता है कि तेज आधी के कारण नीचे से पुल की सारी गचे ही कहीं निकल न जाये और पुल ध्वस्त न हो जाय। बहुत पहले एक बार इसी ढंग की एक घटना हो गई थी। ओहियों मे एक हजार फीट लम्बी मेहराब का एक झूलने वाला पुल आंधी के प्रहार को न सह सकने के कारण उखड़ कर नष्ट हो गया था।

परन्तु 'गोल्डेन गेट-ब्रिज' को इन संभावित खतरों से बचाने एवं रक्षा का इजीनियरो ने पूरा-पूरा ध्यान रखा है। यही कारण है कि यहा जोरो की आंधी उठने पर भी पुल के नष्ट होने का कोई भय नहीं है।

अमेरिका मे इस प्रकार के झूलने वाले पुलों की संख्या बहुत है, पर 'गोल्डेन-गेट' (स्वर्ण द्वार) अपनी रचना-कौशल और अद्भुत मजबूती के लिये ससार मे अत्यधिक प्रसिद्ध है। उसके बाद भी अमेरिका में तथा अन्य देशो मे इस प्रकार के पुलों का निर्माण हुआ है, परन्तु इसकी बराबरी में अब तक कोई दूसरा पुल नही बन सका है।

अमेरिका के इस नगर मे जहॉ पर 'गोल्डेन-गेट' का विश्व-प्रसिद्ध झूलता हुआ पुल है, वहीं संसार का सब सेलम्बा पुल 'सेनफ्रासिस्को ओकलैण्ड पुल' भी है। यह पुल ओकलैण्ड की खाडी पर बना हुआ है और सेनफ्रांसि

तथा ओकलैण्ड नगरो को मिलाता है। यह पुल ससार का सबसे बडा पुल है। इसकी लम्बाई सवा आठ मील की है। ओकलैण्ड की खाडी में जहॉ यह पुल दला हुआ है, गहरे पानी का ऊपरी भाग साढे चार मील लम्बा है। इस पुल के 'मुख्य मेहरावो की लम्वाई 2310 फीट ही है। यह पुल वास्तव में दो पुलों के मेल से दना हैं। ओकलैण्ड की खाडी में एक छोटा सा 'यरवा ब्यूना' नाम का एक द्वीप है। सेनफ्रांसिस्को नगर से यरवा तक तथा यरवा से ओकलैण्ड तक इस पुल का तांता बिछा हुआ है। सेनफ्रासिस्को को यरवा से मिलाने वाला पुल झूलने वाले केवल से बना हुआ है। सेनफ्रांसिस्को और यरवा-ब्यूना के मध्य पानी में एक दहुत ही शक्तिशाली स्तम्भ गडा हुआ है। यह स्तभ ककरीट और सीमेंट का दना हुआ है। ज्वार के समय पानी की सतह से वचाने के लिए इस स्तभ की ऊँचाई व इस स्तंभ की नीव पानी के भीतर 2'8 फीट नीचे सशक्त कडी चट्टान पर डाली गई है पुल की दोनों झूलने वाली मेहरावों के रस्से इसी स्तंभ के सहारे टिके हुये हैं।

संसार का एक अन्य विशाल लम्बा पुल इग्लैण्ड का 'फोर्थ ब्रिज' है। इस पुल की गणना भी ससार के विशालतम पुलो मे की जाती है। इस पुल के निर्माण में इंजीनियरो को काफी मुसीबतो का सामना करना पड़ा था। यह पुल ब्रिटेन की 'फोर्थ' नामकनदी पर बना हुआ है। फोर्थ नदी में बीचोंबीच एक चट्टान है। दोनों तटों से इस चट्टान की दूरी एक तिहाई मील पड़ती है इजीनियरों का विचार था कि जल प्रवाह में स्तभ खडा किये बिना ही किनारे से मध्य में स्थित चट्टान तक और उस चट्टान से दूसरे तट तक पुल खडा किया जाय। इस कठिनाई को दूर करने के लिये इस्पात के तीन मजबूत ऊँचे-ऊँचे पाए खड़े किये गये—दो स्तंभ दोनों किनारो पर और एक मध्य में चट्टान पर। इनमे प्रत्येक स्तंभ की ऊँचाई चार सौ फीट है। हर स्तंभ पर दोनो तरफ को निकलते हुए त्रिभुज के आकार के गार्डर साथ ही साथ लगाये गये। जिससे स्तभ का सन्तुलन न बिगडने पाये।'

'फोर्थ बिज' की पूरी लम्बाई ढाई मील है। नदी के ऊपर जो दो मेहराब है, उनमें से प्रत्येक की ऊँचाई 1710 फीट है।

अपने देश भारत में भी विशाल-विशाल पुलों का निर्माण हो चुका है। सन् 1921 में इस्ट कोष्ट रेल्वे कम्पनी ने गोदाबरी नदी पर एक विशाल पुल वनवाया था। इस पुल की पूरी लम्बाई पौने दो मील है और इसमें 51 स्तम्भ है। बाढ़ के समय 15 लाख घन फीट पानी प्रति सैकण्ड इस पुल के

नीचे से गुजरता रहता है। परन्तु दूसरी ऋतुओं मेंपुल के केवल छ स्तम्भ ही पानी मे रहते हैं और शेष सूखे में रहते हैं।

हुगली नदी पर कलकत्ते में बना हुआ हावडा पुल भी काफी विशाल पुल है। इस पुल के मेहराबों की चौडाई 1500 फीट है। भारत में इसके अतिरिक्त और भी कई महत्त्वपूर्ण पुल है, परन्तु 'आश्चर्यजनक मानव-निर्माणों' मे उन्हे सम्मिलित नही किया जा सकता।

हमने विश्व प्रसिद्ध 'गोल्डेन गेट ब्रिज' का इन पृष्ठो मे उल्लेख किया है, उस पर रेलगाड़ियों की लाइन नहीं बिछाई जा सकती। क्योकि केबलों पर होने के कारण इस पुल से रेलगाड़ियों का आना जाना संभव नहीं है।

❑❑❑

न्यूयार्क की एम्पायर-स्टेट-बिल्डिंग

प्रकृति की शक्ति पर अपना आधिपत्य जमाकर वैज्ञानिक युग के मनुष्य ने किस प्रकार एक नई दुनिया की रचना कर डाली है, इसका अद्भुत उदाहरण हमें पश्चिम के बडे-बडे नगरों मे देखने को मिलता है। इस दिशा मे अमेरिका ने संसार के अन्य राष्ट्रों के मुकाबले अभूतपूर्व प्रगति की है। अमेरिका के न्यूयार्क नगर को देखने से ही हमें पता चल जायेगा कि विज्ञान ने आदमी की शक्ति और सामर्थ्य को कितना प्रोत्साहित किया है। मनुष्य द्वारा निर्मित पर्वताकार भव्य इमारतो का जमघट हमें न्यूयार्क में देखने को मिलेगा। इनमे से कुछ तो ऐसे हैं जिन्हें सहज आश्चर्यजनक मानवी निर्माणो की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

भवन निर्माण की कला का इतिहास बहुत ही प्राचीन काल से प्रारम्भ हुआ है। हम अकसर देखते हैं कि उच्च श्रेणी की इमारतों के निर्माण के पीछे तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ ही विशेष रूप से काम करती हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि किसी भी युग अथवा देश व जाति की संस्कृति का आभास हमें उसकी भवन निर्माण की कला में देखने को मिलेगा। मिश्र के विशाल पिरामिडो, यूनान के विशाल स्तम्भो वाले मन्दिर, रोम की ऊँची मेहरावों वाली इमारतें और मध्य यूरोप के गिरजाघर आदि, इन सबके कलेवर में अपने-अपने समय की संस्कृति, कला तथा लोगों के सामाजिक जीवन प्रवाह का प्रभाव पूर्ण विश्लेषण हमे देखने को मिलता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल तक आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रो आदि के न होने से लोग अधिकतर पौराणिक पद्धतियों से ही अपना कार्य चलाते रहे थे। परन्तु बींसवी शताब्दी में शुरू से ही संसार मे सभी क्षेत्रो मे विकास होने लगा। एक से एक वैज्ञानिक यंत्रो का आविष्कार हुआ। हर ओर

आश्चर्यजनक प्रगति होने लगी। उसी के साथ भवन निर्माण की कला प्रगति होने लगी। पौराणिक काल मे लोगों के पास आदमी का श्र शक्ति ही सर्वोपरि थी। उन दिनों किसी बड़ी इमारत के बनाने में क का समय लग जाता था। हजारों लाखों की संख्या में लोग उन इमा निर्माण कार्य में लगे रहते थे, तब कहीं दस-बीस वर्षों की अवधि में बनकर तैयार होती थी। भारत के ताजमहल, कुतुबमीनार, जयपुर महल, साची के बौद्ध स्तूप आदि इमारतों के बनने में बीसबीस, तीस वर्ष के समय लगे, और वह भी इस अवस्था में कि उसके निर्माण मे मजदूर और कारीगर प्रतिदिन काम किया करते थे। उसी भांति मि पिरामिड, रोम के कोलोसियम, यूनान आदि देशों के भव्य देव-मन्दि के निर्माण में भी बीस-बीस, तीस-तीस वर्षो का समय लगा। मिस्त्र के के निर्माण काल मे तो एक लाख मजदूर प्रतिदिन काम करते थे।

रोम के 'वेटिकन भवन, के सम्मुख सेन्ट-पिटर्स गिजाघर मे तो, कहते हैं 127 वर्ष का समय लगा। 1505 ईस्वी में इसका बन हुआ और 1632 ईस्वी में यह गिरजाघर बनकर तैयार हुआ। इसके की अवधि मे 20 पोपों ने शासन किया। यह इमारत 2 लाख 40 ह फीट के घेरे में खडी है। इसकी लम्बाई 636 फीट है और ऊँचाई 26

परन्तु ज्यों-ज्यो वैज्ञानिक आविष्कारों का जोर बढ़ता गया, की शक्ति भी बढ़ती गई। अब तो वैज्ञानिक इंजीनियरों का कहना वर्तमान साधनों से सेन्ट पिटर्स जैसे गिरजाघर के निर्माण में अधिक से डेढ साल का समय लगेगा। आखिर यह सब कैसे हुआ, आदमी की किस प्रकार इतनी बढ़ गई ? इसका उत्तर है विज्ञान के नये चमत्का जिस काम को एक सौ आदमी दस दिनों में कर सकता था, आजव काम को एक वैज्ञानिक यन्त्र दस मिनट मे कर देने की क्षमता र अब तो वड़े-बडे विशाल महल के निर्माण में भी कठिनाई से एक समय लगता है।

अब जो विशाल-विशाल इमारतों का निर्माण हो रहा है, उन पद्धति का भी त्याग किया जा रहा है। स्थापत्य कला के मार्ग में विकास का ही द्योतक है। 19वी शताब्दी के प्रारम्भ तक और अ में भी स्थापत्य कला में यथा साध्य प्रगति होती रही। परन्तु उस लोगों ने भवनो के निर्माण में पोराणिकता को बिल्कुल छोड़ा न, नो तक इमारतो के निर्माण में यदि लोहे का प्रयोग होता था, त

उसे भी रंग चढ़ा

प्रयोग करना

आदि कीमती

काल तक लोगों

परन्तु

के साथ-साथ

दिया। रोमन

परिवर्तन बीसवीं

गगनचुम्बी इमारतों

परिवर्तन समझा

इंजीनियर इसको

उनके विनष्ट होने

हमने पहले

ार के अन्य

ार की सबसे

इनमें 'एम्पायर

ल से परिपूर्ण हैं

ष्कारों पर आ

न्तों में सबसे

3 हजार टन

ा, 30 लाख

। तादाद में

में कुल 10

। 6500 है

और नीचे

जिये लिफ्ट

भारत में 80

त में 30 हजार

रे देश

। थे। यों कहीं रबड़ का

चढ़ाकर उसे संगमरमर

। जाता था। क्योंकि उस

कर्षण दिखाई देता था।

स्थितियों के परिवर्तन

न करना आरभ कर

ास्तविक क्रान्तिकारी

छले दिनों होने वाला

ना में एक अभूतपूर्व

आज कल के निपुण

के सैकड़ों वर्षों तक

एम्पायर-स्टेट—बिल्डिंग

अपना आधुनिक

दुनिया की रच

नगरों में

राष्ट्रों के मुक

रखने से ही हो

स्त्री को कितना

इमारतों का जमघट

जिन्हें सहज

है।

का इतिहास बहुत ही प्राचीन

के उच्च श्रेणी की इमारत

आर्थिक परिस्थितियों ही

कह सकते है कि किसी भी

में उसकी भवन निर्माण

मेडों, यूनान के निर्माण

इमारतें और

जो समय व

व पूर्ण विश

ारम्भ काल

कलर पौराणि

ाब्दी में शुरू

वैज्ञानिक ढंग

में अमेरिका

र में तो हमें

य प्राप्त होता

द्भुत रचना

क वैज्ञानिक

ार में बनी

के निर्माण

लाख घन

ी सामान

ट ऊँची है

खिड़कियों

ट (ऊपर

आश्चर्यजनक प्रगति होने लगी। उसी के साथ भवन निर्माण कीकला में भी प्रगति होने लगी। पौराणिक काल में लोगों के पास आदमी का श्रम और शक्ति ही सर्वोपरि थी। उन दिनों किसी बडी इमारत के बनाने में कई वर्षों का समय लग जाता था। हजारों लाखों की सख्या मे लोग उन इमारतो के निर्माण कार्य में लगे रहते थे, तब कहीं दस-बीस वर्षो की अवधि में इमारत बनकर तैयार होती थी। भारत के ताजमहल, कुतुबमीनार, जयपुर के हवा महल, साची के बौद्ध स्तूप आदि इमारतो के बनने में बीस-बीस, तीस-तीस वर्ष के समय लगे, और वह भी इस अवस्था में कि उसके निर्माण में हजारो मजदूर और कारीगर प्रतिदिन काम किया करते थे। उसी भाति मिस्त्र के पिरामिड, रोम के कोलोसियम, यूनान आदि देशों के भव्य देव-मन्दिर आदि के निर्माण में भी बीस-बीस, तीस-तीस वर्षो का समय लगा। मिस्त्र के पिरामिड के निर्माण काल में तो एक लाख मजदूर प्रतिदिन काम करते थे।

रोम के 'वेटिकन भवन, के सम्मुख सेन्ट-पिटर्स गिर्जाघर के बनने मे तो, कहते हैं 127 वर्ष का समय लगा। 1505 ईस्वी में इसका बनना शुरू हुआ और 1632 ईस्वी में यह गिरजाघर बनकर तैयार हुआ। इसके निर्माण की अवधि मे 20 पोपों ने शासन किया। यह इमारत 2 लाख 40 हजार वर्ग फीट के घेरे मे खडी है। इसकी लम्बाई 636 फीट है और ऊँचाई 253 फीट।'

परन्तु ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक आविष्कारों का जोर बढता गया, आदमी की शक्ति भी बढती गई। अब तो वैज्ञानिक इंजीनियरों का कहना है कि वर्तमान साधनों से सेन्ट पिटर्स जैसे गिरजाघर के निर्माण में अधिक से अधिक डेढ साल का समय लगेगा। आखिर यह सब कैसे हुआ, आदमी की शक्ति किस प्रकार इतनी बढ गई ? इसका उत्तर है विज्ञान के नये चमत्कार। पहले जिस काम को एक सौ आदमी दस दिनों में कर सकता था, आजकल उसी काम को एक वैज्ञानिक यन्त्र दस मिनट मे कर देने की क्षमता रखता है। अब तो बड़े-बड़े विशाल महल के निर्माण में भी कठिनाई से एक साल का समय लगता है।

अब जो विशाल-विशाल इमारतो का निर्माण हो रहा है, उनमे पुरानी पद्धति का भी त्याग किया जा रहा है। स्थापत्य कला के मार्ग मे यह त्याग विकास का ही द्योतक है। 19वी शताब्दी के प्रारम्भ तक और अन्तिम भाग मे भी स्थापत्य कला में यथा साध्य प्रगति होती रही। परन्तु उस काल तक लोगों ने भवनो के निर्माण मे पौराणिकता को बिल्कुल छोडा नही था। उन दिनों तक इमारतों के निर्माण मे यदि लोहे का प्रयोग होता था तो कारीग-

उसे भी रग चढाकर लकड़ी का रूप दे दिया करते थे। यदि कही रबड का प्रयोग करना पडता था तो उस पर आकर्षक रग चढाकर उसे सगमरमर आदि कीमती पत्थरों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता था। क्योंकि उस काल तक लोगों को लकडी और संगमरमर मे ही आकर्षण दिखाई देता था।

परन्तु धारा बदलते देर न लगी। आदमी ने परिस्थितियो के परिवर्तन के साथ-साथ ही अपनी कला के विकास में भी प्रयत्न करना आरभ कर दिया। रोमन युग के बाद से भवन निर्माण कला में वास्तविक क्रान्तिकारी परिवर्तन बीसवी शताब्दी में ही होना प्रारम्भ हुआ। पिछले दिनों होने वाला गगनचुम्बी इमारतो का निर्माण भवन निर्माण की कला में एक अभूतपूर्व परिवर्तन समझा जायेगा। बडी से बडी इमारतो को आज कल के निपुण इन्जीनियर इस्पात की छड़ो पर ऐसा खडा कर देते हैं कि सैंकडों वर्षो तक उनके विनष्ट होने की संभावना ही नही रहती।

हमने पहले ही बताया है कि इस युग मे स्थापत्य कला मे अमेरिका ससार के अन्य राष्ट्रो से काफी आगे बढा हुआ है। न्यूयार्क नगर में तो हमे ससार की सबसे ऊँची कितनी ही इमारतों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इनमें 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' विश्व में सबसे ऊँची और अद्भुत रचना कोशल से परिपूर्ण है। इस इमारत की ओर देखते ही हमे आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों पर आश्चर्य होने लगता है। यह इमारत अब तक संसार मे बनी इमारतों मे सबसे अधिक ऊँची है। इस 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' के निर्माण मे, 58 हजार टन इस्पाती लोहा, 7 हजार घन गज ककरीट, 20 लाख घन फीट चूना, 30 लाख वर्ग फीट तार की जाली तथा अन्य इमारती सामान बहुत बडी तादाद मे काम में लाया गया हैं। यह इमारत 1248 फीट ऊँची है और इसमें कुल 102 मजिले है। इस इमारत में लगी हुई सारी खिडकियो की संख्या 6400 है। इसमे रात-दिन बिजली द्वारा चालित 67 लिफ्ट (ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आने जाने का यन्त्र) काम करता रहता है। यू समझ लीजिये कि यह गगनचुम्बी विशाल इमारत स्वयं ही एक कस्बा सा है। इस इमारत मे 80 हजार आदमी रहते हैं। जरा कल्पना कीजिये, जिस एक इमारत में 80 हजार लोगों के आवास की व्यवस्था हो, वह कितनी बडी होगी। हमारे देश में कुछ तो अच्छे नगर ऐसे हैं, जिनकी कुल आबादी भी 80 हजार से कम ही होगी। वैसे भी दिन के समय मे भी इस इमारत मे औसतन 20 हजार आदमी हमेशा रहते ही हैं। काम काज के सिलसिले मे वैसे भी दिन मे बाहर के 15-20 हजार आदमी बराबर इस इमारत मे आते जाते ही रहते है

आश्चर्यजनक प्रगति होने लगी। उसी के साथ भवन निर्माण कीकला में भी प्रगति होने लगी। पौराणिक काल मे लोगो के पास आदमी का श्रम और शक्ति ही सर्वोपरि थी। उन दिनो किसी बडी इमारत के बनाने मे कई वर्षों का समय लग जाता था। हजारो लाखों की संख्या में लोग उन इमारतों के निर्माण कार्य में लगे रहते थे, तब कहीं दस-बीस वर्षो की अवधि मे इमारत बनकर तैयार होती थी। भारत के ताजमहल, कुतुबमीनार, जयपुर के हवा महल, साची के बौद्ध स्तूप आदि इमारतो के बनने में बीस-बीस, तीस-तीस वर्ष के समय लगे, और वह भी इस अवस्था में कि उसके निर्माण में हजारो मजदूर और कारीगर प्रतिदिन काम किया करते थे। उसी भांति मिस्त्र के पिरामिड, रोम के कोलोसियम, यूनान आदि देशों के भव्य देव-मन्दिर आदि के निर्माण में भी बीस-बीस, तीस-तीस वर्षो का समय लगा। मिस्त्र के पिरामिड के निर्माण काल में तो एक लाख मजदूर प्रतिदिन काम करते थे।

रोम के 'वेटिकन भवन, के सम्मुख सेन्ट-पिटर्स गिर्जाघर के बनने मे तो, कहते है 127 वर्ष का समय लगा। 1505 ईस्वी में इसका बनना शुरू हुआ और 1632 ईस्वी मे यह गिरजाघर बनकर तैयार हुआ। इसके निर्माण की अवधि में 20 पोपों ने शासन किया। यह इमारत 2 लाख 40 हजार वर्ग फीट के घेरे मे खडी है। इसकी लम्बाई 636 फीट है और ऊँचाई 253 फीट।'

परन्तु ज्यों-ज्यो वैज्ञानिक आविष्कारों का जोर बढता गया, आदमी की शक्ति भी बढती गई। अब तो वैज्ञानिक इंजीनियरों का कहना है कि वर्तमान साधनों से सेन्ट पिटर्स जैसे गिरजाघर के निर्माण में अधिक से अधिक डेढ़ साल का समय लगेगा। आखिर यह सब कैसे हुआ, आदमी की शक्ति किस प्रकार इतनी बढ गई ? इसका उत्तर है विज्ञान के नये चमत्कार! पहले जिस काम को एक सौ आदमी दस दिनो में कर सकता था, आजकल उसी काम को एक वैज्ञानिक यन्त्र दस मिनट में कर देने की क्षमता रखता है। अब तो बडे-बडे विशाल महल के निर्माण में भी कठिनाई से एक साल का समय लगता है।

अब जो विशाल-विशाल इमारतो का निर्माण हो रहा है, उनमें पुरानी पद्धति का भी त्याग किया जा रहा है। स्थापत्य कला के मार्ग में यह त्याग विकास का ही द्योतक है। 19वी शताब्दी के प्रारम्भ तक और अन्तिम भाग में भी स्थापत्य कला में यथा साध्य प्रगति होती रही। परन्तु उस काल तक लोगों ने भवनों के निर्माण मे पौराणिकता को बिल्कुल छोडा नही था। उन दिनों तक इमारतों के निर्माण में यदि लोहे का प्रयोग होता था तो कारीग-

उसे भी रंग चढ़ाकर लकड़ी का रूप दे दिया करते थे। यदि कही रवड का प्रयोग करना पडता था तो उस पर आकर्षक रंग चढ़ाकर उसे संगमरमर आदि कीमती पत्थरों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता था। क्योंकि उस काल तक लोगो को लकडी और संगमरमर में ही आकर्षण दिखाई देता था।

परन्तु धारा वदलते देर न लगी। आदमी ने परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ ही अपनी कला के विकास में भी प्रयत्न करना आरंभ कर दिया। रोमन युग के वाद से भवन निर्माण कला में वास्तविक क्रान्तिकारी परिवर्तन वीसवी शताब्दी में ही होना प्रारम्भ हुआ। पिछले दिनो होने वाला गगनचुम्बी इमारत का निर्माण भवन निर्माण की कला में एक अभूतपूर्व परिवर्तन समझा जयेगा. वडी से वडी इमारतों को आज कल के निपुण इंजीनियर इस्पात की छडों पर ऐसा खडा कर देते है कि सैकडों वर्षो तक उनके विनष्ट होने की सम्भावना ही नहीं रहती।

हमने पहले ही वताया है कि इस युग मे स्थापत्य कला में अमेरिका ससार के अन्य राष्ट्रों से काफी आगे वढ़ा हुआ है. न्यूयार्क नगर में तो हमे संसार की सबसे ऊँची कितनी ही इमारतों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इनमे 'एम्पायर स्टेट विल्डिग' विश्व में सबसे ऊँची और अद्भुत रचना कौशल से परिपूर्ण है। इस इमारत की ओर देखते ही हमे आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों पर आश्चर्य होने लगता है। यह इमारत अव तक ससार मे वनी इमारतों मे सबसे अधिक ऊँची है। इस 'एम्पायर स्टेट विल्डिग' के निर्माण मे, 58 हजार टन इस्पाती लोहा, 7 हजार घन गज ककरीट, 20 लाख घन फीट चूना, 30 लाख वर्ग फीट तार की जाली तथा अन्य इमारती सामान वहुत वडी तादाद में काम में लाया गया हैं। यह इमारत 1248 फीट ऊँची है और इसमें कुल 102 मजिले है। इस इमारत में लगी हुई सारी खिडकियो की सख्या 6400 है। इसमे रात-दिन विजली द्वारा चालित 67 लिफ्ट (ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आने जाने का यन्त्र) काम करता रहता है। यूं समझ लीजिये कि यह गगनचुम्वी विशाल इमारत स्वयं ही एक कस्वा सा है। इस इमारत मे 80 हजार आदमी रहते हैं। जरा कल्पना कीजिये, जिस एक इमारत में 80 हजार लोगो के आवास की व्यवस्था हो, वह कितनी वडी होगी। हमारे देश मे कुछ तो अच्छे नगर ऐसे हैं, जिनकी कुल आवादी भी 80 हजार से कम ही होगी। वैसे भी दिन के समय में भी इस इमारत मे औसतन 20 हजार आदमी हमेशा रहते ही हैं। काम काज के सिलसिले मे वैसे भी दिन में वाहर के 15-20 हजार आदमी वरावर इस इमारत में आते जाते ही रहते है

आश्चर्यजनक प्रगति होने लगी। उसी के साथ भवन निर्माण कीकला में भी प्रगति होने लगी। पौराणिक काल में लोगों के पास आदमी का श्रम और शक्ति ही सर्वोपरि थी। उन दिनो किसी बडी इमारत के बनाने मे कई वर्षों का समय लग जाता था। हजारो लाखों की संख्या मे लोग उन इमारतों के निर्माण कार्य में लगे रहते थे, तब कहीं दस-बीस वर्षो की अवधि में इमारत बनकर तैयार होती थी। भारत के ताजमहल, कुतुबमीनार, जयपुर के हवा महल, सांची के बौद्ध स्तूप आदि इमारतो के बनने में बीस-बीस, तीस-तीस वर्ष के समय लगे, और वह भी इस अवस्था में कि उसके निर्माण में हजारो मजदूर और कारीगर प्रतिदिन काम किया करते थे। उसी भाति मिस्त्र के पिरामिड, रोम के कोलोसियम, यूनान आदि देशों के भव्य देव-मन्दिर आदि के निर्माण मे भी बीस-बीस, तीस-तीस वर्षो का समय लगा। मिस्त्र के पिरामिड के निर्माण काल में तो एक लाख मजदूर प्रतिदिन काम करते थे।

रोम के 'वेटिकन भवन, के सम्मुख सेन्ट-पिटर्स गिर्जाघर के बनने मे तो, कहते हैं 127 वर्ष का समय लगा। 1505 ईस्वी मे इसका बनना शुरु हुआ और 1632 ईस्वी मे यह गिरजाघर बनकर तैयार हुआ। इसके निर्माण की अवधि में 20 पोपो ने शासन किया। यह इमारत 2 लाख 40 हजार वर्ग फीट के घेरे मे खड़ी है। इसकी लम्बाई 636 फीट है और ऊँचाई 253 फीट।'

परन्तु ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक आविष्कारो का जोर बढता गया, आदमी की शक्ति भी बढती गई। अब तो वैज्ञानिक इंजीनियरों का कहना है कि वर्तमान साधनों से सेन्ट पिटर्स जैसे गिरजाघर के निर्माण में अधिक से अधिक डेढ साल का समय लगेगा। आखिर यह सब कैसे हुआ, आदमी की शक्ति किस प्रकार इतनी बढ गई ? इसका उत्तर है विज्ञान के नये चमत्कार! पहले जिस काम को एक सौ आदमी दस दिनो मे कर सकता था, आजकल उसी काम को एक वैज्ञानिक यन्त्र दस मिनट में कर देने की क्षमता रखता है। अब तो बडे-बडे विशाल महल के निर्माण में भी कठिनाई से एक साल का समय लगता है।

अब जो विशाल-विशाल इमारतों का निर्माण हो रहा है, उनमें पुरानी पद्धति का भी त्याग किया जा रहा है। स्थापत्य कला के मार्ग में यह त्याग विकास का ही द्योतक है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक और अन्तिम भाग मे भी स्थापत्य कला में यथा साध्य प्रगति होती रही। परन्तु उस काल तक लोगो ने भवनों के निर्माण मे पोराणिकता को बिल्कुल छोडा नहीं था। उन दिनों तक इमारतों के निर्माण मे यदि लोहे का प्रयोग होता था तो कारीगर

उसे भी रग चढाकर लकडी का रूप दे दिया करते थे। यदि कहीं रबड का प्रयोग करना पडता था तो उस पर आकर्षक रंग चढाकर उसे सगमरमर आदि कीमती पत्थरों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता था। क्योंकि उस काल तक लोगों को लकडी और संगमरमर में ही आकर्षण दिखाई देता था।

परन्तु धारा बदलते देर न लगी। आदमी ने परिस्थितियो के परिवर्तन के साथ-साथ ही अपनी कला के विकास मे भी प्रयत्न करना आरभ कर दिया। रोमन युग के बाद से भवन निर्माण कला में वास्तविक क्रान्तिकारी परिवर्तन बीसवी शताब्दी में ही होना प्रारम्भ हुआ। पिछले दिनों होने वाला गगनचुम्बी इमारतो का निर्माण भवन निर्माण की कला में एक अभूतपूर्व परिवर्तन समझा जायेगा। बडी से बडी इमारतो को आज कल के निपुण इजीनियर इस्पात की छडों पर ऐसा खड़ा कर देते हैं कि सैकडों वर्षो तक उनके विनष्ट होने की संभावना ही नही रहती।

हमने पहले ही बताया है कि इस युग में स्थापत्य कला में अमेरिका ससार के अन्य राष्ट्रो से काफी आगे बढ़ा हुआ है। न्यूयार्क नगर में तो हमे संसार की सबसे ऊँची कितनी ही इमारतों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इनमें 'एम्पायर स्टेट बिल्डिग' विश्व में सबसे ऊँची और अद्‌भुत रचना कौशल से परिपूर्ण है। इस इमारत की ओर देखते ही हमें आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारो पर आश्चर्य होने लगता है। यह इमारत अब तक संसार में बनी इमारतों में सबसे अधिक ऊँची है। इस 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' के निर्माण मे, 58 हजार टन इस्पाती लोहा, 7 हजार घन गज ककरीट, 20 लाख घन फीट चूना, 30 लाख वर्ग फीट तार की जाली तथा अन्य इमारती सामान बहुत बडी तादाद मे काम में लाया गया हैं। यह इमारत 1248 फीट ऊँची है और इसमे कुल 102 मंजिलें हैं। इस इमारत में लगी हुई सारी खिडकियो की संख्या 6400 है। इसमें रात-दिन बिजली द्वारा चालित 67 लिफ्ट (ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आने जाने का यन्त्र) काम करता रहता है। यू समझ लीजिये कि यह गगनचुम्बी विशाल इमारत स्वयं ही एक कस्बा सा है। इस इमारत में 80 हजार आदमी रहते हैं। जरा कल्पना कीजिये, जिस एक इमारत मे 80 हजार लोगों के आवास की व्यवस्था हो, वह कितनी बड़ी होगी। हमारे देश मे कुछ तो अच्छे नगर ऐसे हैं, जिनकी कुल आबादी भी 80 हजार से कम ही होगी। वैसे भी दिन के समय मे भी इस इमारत मे औसतन 20 हजार आदमी हमेशा रहते ही हैं। काम काज के सिलसिले मे वैसे भी दिन में बाहर के 15-20 हजार आदमी बराबर इस इमारत में आते जाते ही रहते है

आश्चर्यजनक प्रगति होने लगी। उसी के साथ भवन निर्माण कीकला में भी प्रगति होने लगी। पौराणिक काल मे लोगों के पास आदमी का श्रम और शक्ति ही सर्वोपरि थी। उन दिनो किसी बड़ी इमारत के बनाने मे कई वर्षों का समय लग जाता था। हजारो लाखो की सख्या मे लोग उन इमारतों के निर्माण कार्य में लगे रहते थे, तब कही दस-बीस वर्षो की अवधि में इमारत बनकर तैयार होती थी। भारत के ताजमहल, कुतुबमीनार, जयपुर के हवा महल, साची के बौद्ध स्तूप आदि इमारतों के बनने में बीस-बीस, तीस-तीस वर्ष के समय लगे, और वह भी इस अवस्था में कि उसके निर्माण में हजारो मजदूर और कारीगर प्रतिदिन काम किया करते थे। उसी भांति मिस्त्र के पिरामिड, रोम के कोलोसियम, यूनान आदि देशो के भव्य देव-मन्दिर आदि के निर्माण मे भी बीस-बीस, तीस-तीस वर्षो का समय लगा। मिस्त्र के पिरामिड के निर्माण काल में तो एक लाख मजदूर प्रतिदिन काम करते थे।

रोम के 'वेटिकन भवन, के सम्मुख सेन्ट-पिटर्स गिर्जाघर के बनने मे तो, कहते हैं 127 वर्ष का समय लगा। 1505 ईस्वी मे इसका बनना शुरू हुआ और 1632 ईस्वी में यह गिरजाघर बनकर तैयार हुआ। इसके निर्माण की अवधि में 20 पोपो ने शासन किया। यह इमारत 2 लाख 40 हजार वर्ग फीट के घेरे मे खड़ी है। इसकी लम्बाई 636 फीट है और ऊँचाई 253 फीट।'

परन्तु ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक आविष्कारों का जोर बढता गया, आदमी की शक्ति भी बढ़ती गई। अब तो वैज्ञानिक इंजीनियरों का कहना है कि वर्तमान साधनों से सेन्ट पिटर्स जैसे गिरजाघर के निर्माण मे अधिक से अधिक डेढ साल का समय लगेगा। आखिर यह सब कैसे हुआ, आदमी की शक्ति किस प्रकार इतनी बढ गई ? इसका उत्तर है विज्ञान के नये चमत्कार! पहले जिस काम को एक सौ आदमी दस दिनो में कर सकता था, आजकल उसी काम को एक वैज्ञानिक यन्त्र दस मिनट मे कर देने की क्षमता रखता है। अब तो बडे-बडे विशाल महल के निर्माण में भी कठिनाई से एक साल का समय लगता है।

अब जो विशाल-विशाल इमारतो का निर्माण हो रहा है, उनमे पुरानी पद्धति का भी त्याग किया जा रहा है। स्थापत्य कला के मार्ग में यह त्याग विकास का ही द्योतक है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक और अन्तिम भाग मे भी स्थापत्य कला में यथा साध्य प्रगति होती रही। परन्तु उस काल तक लोगो ने भवनो के निर्माण में पौराणिकता को बिल्कुल छोड़ा नहीं था। उन दिनो तक इमारतो के निर्माण मे यदि लोहे का प्रयोग होता था तो कारीग

उसे भी रंग चढ़ाकर लकड़ी का रूप दे दिया करते थे। यदि कही रबड़ का प्रयोग करना पड़ता था तो उस पर आकर्षक रंग चढ़ाकर उसे सगमरमर आदि कीमती पत्थरों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता था। क्योंकि उस काल तक लोगो को लकडी और सगमरमर मे ही आकर्षण दिखाई देता था।

परन्तु धारा बदलते देर न लगी। आदमी ने परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ ही अपनी कला के विकास मे भी प्रयत्न करना आरंभ कर दिया। रोमन युग के बाद से भवन निर्माण कला में वास्तविक क्रान्तिकारी परिवर्तन बीसवी शताब्दी में ही होना प्रारम्भ हुआ। पिछले दिनों होने वाला गगनचुम्बी इमारतों का निर्माण भवन निर्माण की कला में एक अभूतपूर्व परिवर्तन समझा जायेगा। बडी से बडी इमारतो को आज कल के निपुण इजीनियर इस्पात की छड़ों पर ऐसा खड़ा कर देते हैं कि सैकड़ों वर्षो तक उनके विनष्ट होने की संभावना ही नही रहती।

हमने पहले ही बताया है कि इस युग में स्थापत्य कला मे अमेरिका ससार के अन्य राष्ट्रो से काफी आगे बढा हुआ है। न्यूयार्क नगर में तो हमे ससार की सबसे ऊँची कितनी ही इमारतो को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इनमे 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' विश्व में सबसे ऊँची और अद्भुत रचना कौशल से परिपूर्ण है। इस इमारत की ओर देखते ही हमे आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारो पर आश्चर्य होने लगता है। यह इमारत अब तक ससार मे बनी इमारतो में सबसे अधिक ऊँची है। इस 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' के निर्माण मे, 58 हजार टन इस्पाती लोहा, 7 हजार घन गज कंकरीट, 20 लाख घन फीट चूना, 30 लाख वर्ग फीट तार की जाली तथा अन्य इमारती सामान बहुत बडी तादाद में काम में लाया गया हैं। यह इमारत 1248 फीट ऊँची है और इसमें कुल 102 मंजिले हैं। इस इमारत मे लगी हुई सारी खिडकियो की सख्या 6400 है। इसमें रात-दिन बिजली द्वारा चालित 67 लिफ्ट (ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आने जाने का यन्त्र) काम करता रहता है। यू समझ लीजिये कि यह गगनचुम्बी विशाल इमारत स्वयं ही एक कस्बा सा है। इस इमारत में 80 हजार आदमी रहते हैं। जरा कल्पना कीजिये, जिस एक इमारत में 80 हजार लोगो के आवास की व्यवस्था हो, वह कितनी बड़ी होगी। हमारे देश में कुछ तो अच्छे नगर ऐसे हैं, जिनकी कुल आबादी भी 80 हजार से कम ही होगी। वैसे भी दिन के समय में भी इस इमारत मे औसतन 20 हजार आदमी हमेशा रहते ही हैं। काम काज के सिलसिले मे वैसे भी दिन में बाहर के 15-20 हजार आदमी बराबर इस इमारत में आते जाते ही रहते हैं

अपनी कल्पना के सहारे आप न्यूयार्क स्थित ससार की सबसे विशाल तथा ऊँची इमारत का अनुमान लगा सकते है। इस इमारत के एकदम शिखर पर जैपलीन वायुपोतो के लगर के वास्ते बिल्कुल चमकदार इस्पात का एक स्तम्भ गडा हुआ है।

इस इमारत के बनने मे समय कितनालगा था? कुल बारह महीने की अल्प अवधि मेही यह संसार प्रसिद्ध इमारत बनकर तैयार हो गई थी। सन् 1931 में इसका कार्य समाप्त हुआ। इसके निर्माण मे कुल मिलाकर पन्द्रह करोड रुपये खर्च हुये थे।

अमेरिका के न्यूयार्क नगर मे ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओ की भरमार सी है। किन्तु 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' अपनी विशालता के कारण सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस इमारत की एक और विशेषता है। इसमें रहने वालों को अपने जीवन की आवश्यकताओं के लिये कहीं भी बाहर जाने की जरूरत नहीं पड़ती है। सारी चीजें यहीं से प्राप्त की जा सकती हैं। इसके अन्दर ही आफिस, दुकाने, थियेटर, सिनेमाघर, क्लब, होटल, गिरजाघर, नहाने के तालाब, पार्क एवं सुन्दर बाटिकाए, सभी कुछ हैं। इस इमारत के अन्दर ही इसमें रहने वालों की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है।

इसमे रहने वाले सवेरे चाय-पानी आदि के लिये इसी इमारत के जलपान-गृह में जाते है, इसी इमारत में स्थित आफिसों में काम करते हैं और तीसरे पहर वहीं पर होटल में जाकर भोजन भी करते है। फिर सध्या के समय इमारत में स्थित क्लबों मे जाते हैं, टेनिस आदि खेल खेलते हैं। मतलब यह कि सब कुछ इसी इमारत के घेरे में सम्पन्न हो जाता है। लोगो को अपनी किसी प्रकार की आवश्यकता के लिये कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं है।

दिन के समय इस इमारत की सारी खिडकियाँ बन्द रहती हैं, ताकि बाहर की धूल घुसकर इनके कमरों को गन्दा न कर द। बिजली के यन्त्रों के सहारे सभी कमरों में तथा बडे-बडे फ्लैटो मे ताजी शुद्ध हवा भेजी जाती है। शरद ऋतु में कमरों मे हल्की गर्म हवा दी जाती है। उस हवा को कमरों मे भेजने से पहले ऊपर ही यन्त्र द्वारा उसे गर्म कर लेते हैं। प्रत्येक दो-दो अथवा चार-चार मिनट मे ऊपर से गर्मी के दिनो में सर्द तथा जाडे में गर्म हवा भेजी जाती है। इस इमारत की कोठरियों की सफाई में भी सुविधा का अत्यधिक ख्याल रखा गया है। दीवारो और फर्श को आसानी से पानी से साफ कर दिया जाता है इन कमरो में चूहे आदि जैसे जीव प्रवेश नहीं क

पाते, क्योंकि सफाई और मज़बूती के ख्याल से इनका निर्माण किया गया है।

न्यूयार्क मे और भी कई इमारतें हैं जो संसार में अद्वितीय हैं, तथा एम्पायर स्टेट बिल्डिंग से थोड़ी ही छोटी हैं। वास्तविक बात यह है कि न्यूयार्क नगर मे गगनचुम्बी इमारतो के निमाण से पूर्व सर्वप्रथम अमेरिका के शिकागो नगर में 'स्काई स्क्रेपर'(पुतलीघर) के ढग की ऊँची इमारते बनाई गई थी। परन्तु शिकागों मे चट्टानो के अश की कमी होने के कारण अधिक से अधिक इमारतो के निर्माण का कार्यक्रम नही चल सका। वहां की भूमि पर ऊँची इमारतों की स्थापना मे निर्माण करने वाले कारीगरों को कई प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पडता था। इसके विपरीत न्यूयार्क नगर स्वत ही एक सशक्त चट्टान पर बसा हुआ है। 'पुतलीघर' जैसे भवनों के निर्माण के लिये भी न्यूयार्क की भूमि पूर्णत.उपयुक्त है। यही कारण है कि न्यूयार्क नगर मे 'स्काई स्क्रेपर' ढग की अनेक इमारतें बन गई हैं।

अकेले न्यूयार्क मे ही, पेरिस के 984 फीट ऊँचे 'ईफिस मिनार' को छोडकर 600 फीट से ऊँची बारह इमारतें है। वैसे तो 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' ससार की सर्वप्रसिद्ध इमारत है, परन्तु न्यूयार्क में और भी कई उल्लेखनीय ऊँची इमारतें हैं जिनकी तुलना में ससार में अन्य इमारतों का पता नहीं चलता है।

न्यूयार्क नगर में ही ससार प्रसिद्ध एक दूसरी इमारत है, 'क्रिस्लर-इमारत'। ऊँचाई मे यह इमारत 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' से केवल दो सौ फीट ही कम है। संसार में 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' के बाद इसी इमारत का नम्बर आता है। कोई-कोई तो यहाँ तक कहते है कि सुन्दरता में 'क्रिस्लर बिल्डिंग' 'एम्पायर स्टेट बिल्डिग' से बढ-चढ कर है। इस इमारत की गैलरी की एक छत पर ससार का सबसे विशाल भित्ति-चित्र अंकित है इस चित्र की लम्बाई करीब-करीब 110 फीट तथा चौडाई 94 फीट के लगभग है। इस इमारत मे 77 मंजिले हैं और इसकी पूरी ऊँचाई 1046 फीट है। इस प्रकार यह इमारत भी एक छोटा-मोटा कस्बा ही है।

न्यूयार्क स्थिति संसार प्रसिद्ध एक और भी इमारत का वर्णन सुनिये। यद्यपि यह इमारत ऊँचाई के विचार से न्यूयार्क की ही कई दूसरी इमारतो से छोटी है, परन्तु विशालता के लिहाज से यह इमारत संसार मे सबसे अधिक विशाल है। यह है 'रॉकफेलेर बिल्डिंग।'

इस इमारत को वास्तव में एक इमारतन कहकर कई विशाल इमारतो का एक समूह कहा जाना ज्यादा उपयुक्त होगा। इन इमारतों का विस्तार लगभग बारह एकड भूमि मे है। इसमे कुल मिलाकर बारह इमारते हैं। इन्ही इमारतो के मध्य भाग में 'रेडियो कारपोरेशन ऑफ अमेरिका' की 850 फीट ऊँची भव्य अट्टालिका है। रॉकफेलेर सेन्टर के इमारत समूहों की पूरी आबादी लगभग ढाई लाख है। इन इमारतो मे कुल मिलाकर 28 हजार खिडकियॉ हैं, दस हजार दरवाजे हैं और बिजली द्वारा चालित 185 लिफ्टें हैं। कहते है कि इनके निर्माण में कुल एक लाख पच्चीस हजार टन इस्पात और 40 करोड ईटों का प्रयोग हुआ है।

न्यूयार्क की ही एक और भी विल्डिंग 'बूलवर्थ-बिल्डिंग' अपनी विशालता और भव्यता के लिये संसार मे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। इस इमारत में कुल मिलाकर 55 मजिले है और इसकी ऊँचाई 792 फीट है। इसकी कोठरियो का क्षेत्रफल लगभग तीस एकड़ से भी अधिक है। इसमे कुल पॉच हजार खिडकियॉ लगी हुई हैं। इस इमारत की देखभाल के लिये तीन सौ कर्मचारी कार्यरत हैं।

अमेरिका के अतिरिक्त विश्व के देशो में इतनी विशाल ऊँची इमारते नही हैं। लंदन, बर्लिन, पेरिस आदि नगरों में भी ऊँची-ऊँची इमारतें हैं, पर न्यूयार्क की इमारतों के मुकाबले उनमें उल्लेखनीय विशेषतायं नहीं पाई जाती है। यहॉ पर पेरिस की विश्व प्रसिद्ध 'ईफिल मीनार' का उल्लेख कर देना भी अनुचित नही होगा। अमेरिका के बाहर के देशों मे एक यही इमारत है जो न्यूयार्क की गगनचुंबी इमारतों की श्रेणी में रखी जा सकती है।

ईफिल मीनार सन् 1889 में पेरिस में आयोजित प्रदर्शनी की याद में बनाई गई थी। उस समय से आज तक यह भव्य विशाल इमारत ज्यों की ज्यों खडी है। इस मीनार की ऊँचाई 984 फीट है। इसकी चोटी पर एक बिजली का तार दौडाया गया है और एक दम ऊपरी हिस्से तक लिफ्ट के आने जाने की भी व्यवस्था है।

इनके अतिरिक्त अमरीका के अन्य नगरों में भी एक से एक ऊँची भव्य इमारतें है। परन्तु न्यूयार्क नगर इनमें सबसे आगे है। अब तक किसी ने भी इस नगर की इस महानता को पार नहीं किया है, और कोई नगर न्यूयार्क को परास्त कर सकेगा, इसकी संभावना भी अभी कम ही नजर आती है।

□□□



जन्म 04 नवम्बर 1960 ई0 खेड़ी – टी जिला–महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)

पिता स्व. [illegible] सिंह चौहान

माता श्रीमती शीला देवी

शिक्षा एम.ए.–हिन्दी (प्रथम स्थान– उ.वि.वि. इलाहाबाद), विधि स्नातक (राँ वि.वि.), बी.एड (महर्षि दयानन्द वि.वि. रोहतक एवं राँची वि.वि.) पी.जी. डिप्लोमा इन ट्रांसलेशन (गुरुनानक देव विश्व–विद्यालय–अमृतसर), पीएच–डी– ब्रजनिधि कविमण्डल और महाकवि–जगदीश भट्ट के हस्तलिखित ग्रन्थों का शोध प्रबन्ध– राजस्थान वि.वि. जयपुर)

प्रकाशन 1 साहित्यिक ललित निबन्ध 2 नानी के घर जाने दो 3 मगर आ सयर, 4 गिलहरी बाई(बाल साहित्य 5 गुलेरी की सम्पूर्ण कहानियाँ 6 नगर दुर्दशा 7 हिन्दी वाङ्मय–वस्तुनिष्ठ ए प्रायोगिक रूप 8 विश्व के महान आश्च 9 प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में कविता गजल,गीत, आलोचनात्मक निबन्ध समीक्ष

शीघ्र प्रकाश्य हिन्दी साहित्य का इतिहा

सम्पादक साहित्य चन्द्रिका (साहित्यि –सांस्कृतिक मासिक पत्रिका)

सम्प्रति हिन्दी विभाग एस.एस.ज पारीक स्नातकोत्तर महाविद्याल बनीपार्क, जयपुर (राज.) में प्राध्यापक

सम्पर्क ए–215, मोती नग गली नं7 क्वींस रोड जयपुर 3020

दूरभाष 0141 2359838